18714

सत्यमेव जयते

मृत्यु के दण्डादेश के निष्पादन का ढंग तथा अन्य आनुषंगिक विषयों

पर

187वीं रिपोर्ट

भारत का विधि आयोग

अक्टूबर, 2003

न्यायाधिपति
एम. जगन्नाथ राव
अध्यक्ष,

सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग
शास्त्री भवन
नई दिल्ली- 110001
दूरभाष : 3384475
फैक्स 3073864,
3388870
निवास :
1, जनपथ
नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 3019465
17 अक्टूबर, 2003

अ.स.प संख्यांक—वि. प.(लो. स.)

प्रिय श्री अरुण जेटली जी,

'मृत्यु के दण्डादेश के निष्पादन का ढ़ंग तथा आनुषंगिक विषयों' पर भारत के विधि आयोग की 187वीं रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए मुझे प्रसन्नता है। इस विषय को आयोग ने स्वप्रेरणा से उठाया है। वर्तमान में, दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 354 (5) के अनुसार मृत्यु के दण्डादेश के निष्पादन का ढंग 'फांसी लगाकर तब तक लटकाया जाना है जब तक मृत्यु न हो जाए'।

उच्च न्यायालय ने **वचन सिंह** बनाम **भारत का संघ राज्य** (1982) 3 एससीसी 25 में यह टिप्पणी की है कि मृत्यु के दण्डादेश के निष्पादन में जो शारीरिक पीड़ा और वेदना होती है वह क्रूरतापूर्ण और दया रहित है। अत: आयोग ने मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के दयापूर्ण ढंग के लिए उपबंध करने हेतु यह अध्ययन आरम्भ किया था। तदनुसार, आयोग ने इस विषय पर एक परामर्श पत्र परिचालित किया। आयोग ने समस्त देशों में प्रचलित मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के विभिन्न ढंगों पर विचार किया। इस परामर्श पत्र पर अनेक प्रत्युत्तर प्राप्त हुए। इस विषय पर नई दिल्ली में एक संगोष्ठी (सेमीनार) का आयोजन भी किया गया। विभिन्न प्रत्युत्तर तथा संगोष्ठी में हुए विचार विमर्श के आधार पर आयोग ने यह रिपोर्ट तैयार की है। आयोग ने यह सिफारिश की है कि द. प्र. सं., 1973 की धारा 354 (5) का संशोधन किया जाए तथा मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के लिए जब तक अपराधी की मृत्यु न हो जाए तब तक प्राणांतक इन्जेक्शन देने के वैकल्पिक ढंग का उपबंध किया जाए। दण्डादेश के निष्पादन के ढंग की बाबत उपर्युक्त आदेश देने का निर्णय न्यायाधीश के विवेक पर छोड़ा जाएगा। तथापि, ऐसे विवेक का प्रयोग करने से पूर्व सिद्धदोष व्यक्ति को इस प्रश्न पर सुना जाएगा कि मृत्यु के दण्डादेश के निष्पादन का क्या ढंग होना चाहिए।

वर्तमान में उन मामलों में उच्च न्यायालय में अपील का कोई कानूनी अधिकार नहीं है जिनमें उच्च न्यायालय सेशन न्यायाधीश द्वारा दिए गए मृत्यु दण्डादेश की पुष्टि करता है अथवा जहां उच्च न्यायालय सेशन न्यायाधीश द्वारा दिए गए दण्ड में वृद्धि करके मृत्यु का दण्डादेश देता है। आयोग, विभिन्न प्रत्युत्तरों और दृष्टिकोणों पर विचार करने के पश्चात्, उन मामलों में उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील करने के कानूनी अधिकार का उपबंध करने के लिए सिफारिश कर रहा है जहां उच्च न्यायालय मृत्यु दण्डादेश देता है या उसकी पुष्टि करता है। तदनुसार, आयोग ने उच्चतम न्यायालय (दाण्डिक अधिकारिता का विस्तारण) अधिनियम, 1970 में उच्चतम न्यायालय को अपील करने के अधिकार का उपबंध करने के लिए समुचित संशोधन करने की सिफारिश की है।

इसके अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण पहलू सैन्य बलों के विषय में है। इस समय सेना अधिनियम, 1950, नौसेना अधिनियम, 1957 और वायु सेना अधिनियम, 1950 के अंतर्गत कोर्ट मार्शल द्वारा पारित मृत्यु दण्डादेश के विरुद्ध अपील के अधिकार का कोई उपबंध नहीं है। आयोग ने प्रत्युत्तरों और दृष्टिकोणों पर विचार करने के पश्चात् सिफारिश की है कि कोर्ट

मार्शल द्वारा ऊपर उल्लिखित के अनुसार पारित मृत्यु दण्डादेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील होनी चाहिए। यह सिफारिश भी की जा रही है कि ऊपर उल्लिखित कानूनों में मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के वर्तमान ढंग, अर्थात्, 'गर्दन में फांसी लगा कर लटकाना' के स्थान पर 'तब तक प्राणांतक इन्जेक्शन लगाना जब तक अपराधी की मृत्यु न हो जाए' का प्रतिस्थापन किया जाए। इसके अतिरिक्त एक अन्य उपबंध भी होना चाहिए कि प्राणांतक इन्जेक्शन कोर्ट मार्शल द्वारा पारित मृत्यु के दण्डादेश निष्पादन का एक वैकल्पिक ढंग होना चाहिए। अत: आयोग ने सिफारिश की है कि इस प्रयोजन के लिए उपरोक्त अधिनियमों में समुचित संशोधन किया जाए। आयोग ने, अन्तिमत: यह सिफारिश की है कि मृत्यु दण्डादेश के विषयों की सुनवाई उच्चतम न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की पीठ द्वारा की जानी चाहिए। आयोग यह सिफारिश भी करता है कि इन उद्देश्यों को प्रभावी करने के लिए उच्चतम न्यायालय नियमों में समुचित संशोधन किया जाए।

सादर,

भवदीय

(एम. जगन्नाथ राव)

श्री अरुण जेटली
विधि तथा न्याय मंत्री
भारत सरकार, शास्त्री भवन,
नई दिल्ली।

विषय-सूची

क्रम सं.	अध्याय	पृष्ठ सं.
1.	भूमिका	1—3
2.	विभिन्न युगों में मृत्यु दण्ड के निष्पादन के ढंग	4—9
	(क) सूली पर लटकाना	
	(ख) चिता पर जलाना	
	(ग) चक्र	
	(घ) गिलोटीन	
	(ङ) फांसी पर लटकाना तथा गलघोट.	
	(च) मुखिया की कुल्हाड़ी.	
	(छ) शूट करने वाला दस्ता	
	(ज) गैस चेम्बर.	
	(झ) बिजली का करेंट लगा कर मृत्यु	
	(ञ) प्राणांतक इन्जैक्शन	
3.	यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका में संघीय मृत्यु दण्ड का निष्पादन तथा उसके विभिन्न राज्यों में मृत्यु दण्ड की अनोखी प्रक्रिया	10—11
	संघीय मृत्युदण्ड	
	विभिन्न राज्यों में मृत्युदण्ड का निष्पादन.	
4.	भारत में मृत्यु दण्डादेश का निष्पादन	12—17
	(क) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 तथा जेल मैन्युअल	
	(ख) सेना अधिनियम, वायु सेना अधिनियम तथा नौसेना अधिनियम के अनुसार मृत्यु दण्ड का निष्पादन	
5.	मृत्यु दण्ड के निष्पादन का ढंग	18—23
6.	उन मामलों में उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील का अधिकार जहां उच्च न्यायालय द्वारा मृत्यु के दण्डादेश की पुष्टि कर दी जाती है या मृत्यु दण्डादेश दिया जाता है तथा मृत्यु दण्डादेश पारित करने के संबंध में उच्चतम न्यायालय में प्रक्रिया	24—33
7.	संगोष्ठी की कार्यवाही और परामर्श पत्र से संबंधित लोक प्रत्युत्तर	34—44
8.	सिफारिशें	45—47
उपाबंध-1		
	मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन का ढंग विषय पर परामर्श पत्र का सारांश तथा आनुषंगिक विषय (प्रश्नावली सहित)	48—53

अध्याय 1

भूमिका

''राज्य को बदले की भावना से दण्ड नहीं देना चाहिए''
—सम्राट अशोक

मृत्यु दण्ड अनंतकाल से सजा का एक ढंग रहा है। इन अनेक वर्षों में इस ढंग के समर्थन में और विरोध में जो तर्क दिए जाते हैं उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। अपराध और सजा का ढंग उस संस्कृति तथा सभ्यता के स्वरूप के साथ जुड़ा हुआ है जिनसे उनका उदय हुआ है। सभ्यता की दौड़ के साथ-साथ मृत्यु दण्ड के ढंगों में भी विशेष मानवीय परिवर्तन देखने को मिलते हैं। तथापि, भारत के मृत्यु दण्ड के निष्पादन के ढंग के प्रश्न पर कोई अधिक विचार-विमर्श नहीं हुआ है।

विधि आयोग ने विज्ञान, तकनीक, औषधि विज्ञान, निश्चेतना विज्ञान के क्षेत्र में तकनीकी विकास के कारण तथा इस कारण से भी कि मृत्यु दण्डादेश विषय पर विधि आयोग की 35वीं रिपोर्ट तथा 1967 के पश्चात् तीन दशाब्दियों से अधिक समय व्यतीत हो चुका है, मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के ढंग के संदर्भ में, इस विषय को स्वत: उठाया है। विधि आयोग ने 1967 में प्रचलित मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के विभिन्न ढंगों का अध्ययन किया था। आयोग ने विषय 58(ग) के पैरा 1149 में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले थे :—

''हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अधिकांशत: यह राय है कि फांसी के स्थान पर कोई अधिक दयालुतापूर्ण और पीड़ा रहित ढंग अपनाया जाना चाहिए ....।''

तथापि, जैसा पैरा 1150 और 1151 में स्पष्ट किया गया है आयोग किसी निश्चित परिणाम तक पहुंचने में समर्थ नहीं हो सका।

> ''1150. यह विषय कुछ हद तक चिकित्सीय राय पर निर्भर करता है। सामान्य मत यह है कि ऐसा ढंग अपनाया जाना चाहिए जो **सुनिश्चित, दयालुतापूर्ण, त्वरित** और **शिष्ट** हो और इस विषय पर कोई विरोध भी नहीं है। यह सत्य है कि इस विषय में वास्तविक दु:ख की बात सिर पर लटकती मृत्यु की तलवार का आसन्न भय है। समाज की यह जिम्मेदारी है कि वह इस बारे में आश्वस्त हो कि मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के समय कम से कम कष्ट हो। तथापि इस विषय में निश्चित राय प्रकट करना कठिन है कि इन कसौटियों पर तीनों ढंगों में से कौन सा खरा उतरेगा, विशेष रूप से तब जब दो अन्य ढंगों का अब तक प्रयोग ही नहीं हुआ है। हम, इस समय, इस विषय पर किसी दृढ़ निश्चिय पर पहुंचने की स्थिति में नहीं हैं। निश्चेतना विज्ञान में प्रगति तथा विभिन्न ढंगों के व्यापक अध्ययन से और साथ ही अन्य देशों में जो अनुभव हुए हैं और विद्यमान ढंगों में जो विकास तथा सुधार हुए हैं, संभवत: भविष्य में उन पर विचार करने से इस विवादास्पद विषय में निर्णय लेने का कोई ठोस आधार बन सकेगा।''
>
> ''1151. अंत:, हम इस विषय पर जो विधि है उसमें किसी परिवतर्नन की सिफारिश नहीं कर रहे हैं। तथापि, हम यहां यह कहना चाहते हैं कि हम इस मत से सहमत नहीं हैं कि किसी अन्य ढंग/पद्धति को प्रतिस्थापित करने से मृत्यु दण्ड के अवरोधक प्रभाव में कमी आयेगी।''

रायल कमीशन ने मृत्यु दण्ड विषयक रिपोर्ट 1949—1953 में मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के प्रचलित ढंगों/पद्धतियों पर चर्चा करते हुए कहा है कि मृत्यु दण्ड के निष्पादन में तीन शर्तें पूरी होनी चाहिएं, अर्थात्,—(क) दण्ड निष्पादन यथासंभव न्यूनतम कष्टपूर्ण होना चाहिए; (ख) निष्पादन यथासंभव त्वरित होना चाहिए ; तथा (ग) शरीर की दुर्दशा न्यूनतम होनी चाहिए। उक्त आयोग ने पृष्ठ 256 से 261 पर निम्नलिखित टिप्पणी की है :—

"इस विषय में आयोग ने स्वयं को दण्ड निष्पादन के केवल 4 ढंगों (प्राणांतक गैस, शूटिंग, बिजली का करंट लगाना, गिलोटीन) तक ही सीमित नहीं रखा है। उसने यह जांच पड़ताल भी की है कि क्या कोई ऐसा ढंग भी है जिसका अभी तक प्रयोग न किया गया हो और जिससे मृत्यु कम कष्टपूर्ण हो और उतनी ही निश्चित हो जितनी फांसी से होती है। किन्तु जो "फांसी की अपेक्षा अधिक शिष्ट हो" और उतनी हृदय विदारक और क्रूरतापूर्ण न हो जितनी फांसी होती है ....।

आयोग ने विभिन्न कारणों से यह निर्णय लिया कि प्राणांतक इन्जेक्शन को न्यायिक दण्ड निष्पादन के ढंग के रूप में अपनाया जा सकता है ....। इस प्रश्न पर समय-समय पर विशेष रूप से निश्चेतना विज्ञान में हुई प्रगति के संदर्भ में विचार किया जाना चाहिए।" (पृष्ठ 261)

यह बात अब स्वीकार की जा चुकी है कि मृत्यु दण्डादेश किसी अन्य दण्ड की अपेक्षा गुणात्मक दृष्टि से भिन्न है क्योंकि उसे पलटा नहीं जा सकता और यदि कोई भूल हो जाती है तो उसे सुधारने का कोई रास्ता नहीं है। वचन सिंह के मामले में (एआईआर 1982 एस सी 1325) भारत के उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने 41 के बहुमत से, जिसमें माननीय न्यायाधीश श्री पी. एन. भगवती ने असहमति प्रकट की थी, मृत्युदण्ड की संवैधानिक वैधता को स्वीकार किया है।

इस सब के बावजूद, भारतीय समाज पर, जो विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है, यह सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी आती है कि मृत्युदण्ड के निष्पादन के समय होने वाला कष्ट कम से कम या न्यूनतम हो। यह तब और आवश्यक हो जाता है जब प्राणदण्ड न्यायिक आदेश का परिणाम हो। भारत में मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के बारे में इस रिपोर्ट के अध्याय 4 में चर्चा की गई है।

विधि आयोग ने अपनी 35वीं रिपोर्ट में की गई टिप्पणियों के अनुसरण में मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के विभिन्न ढंगों का अध्ययन करने का तथा भारत में मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन की विद्यमान पद्धति में, यदि आवश्यक हो तो, किन्हीं सुधारों की सिफारिश करने का निर्णय लिया। विधि आयोग ने एक प्रश्नावली के साथ एक परामर्श पत्र तैयार किया। जिसका प्रयोजन यह नहीं था कि मृत्यु दण्ड को समाप्त किया जाए या रहने दिया जाए अपितु केवल इन तीन प्रश्नों तक ही सीमित रखना था, अर्थात्, (क) मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन का ढंग, (ख) मृत्युदण्ड का आदेश देने में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों के बीच न्यायिक राय में अंतर को दूर करने की प्रक्रिया, तथा (ग) मृत्यु दण्डादेश के विषय में अपराधी को उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील का अधिकार प्रदान करने की आवश्यकता। आयोग ने इस परामर्श पत्र में भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत मामलों, विभिन्न अधिकारियों, विभिन्न आयोगों की रिपोर्टों, दण्डनिष्पादन के विभिन्न ढंगों के इतिहास और इन विषयों पर विभिन्न पुस्तकों, लेखों, समाचार पत्रों की रिपोर्टों, सम सामयिक विकासों तथा संबंधित वेब साइटों का उल्लेख किया है।

उक्त परामर्श पत्र को विधि आयोग की वेबसाइट "lawcommission of india.nic.in" पर भी उपलब्ध कराया गया था यह निवेदन भी किया गया था कि प्रत्युत्तर ई-मेल द्वारा या सदस्य सचिव, भारत का विधि आयोग, नई दिल्ली को संबोधित डाक द्वारा भेजे जाने चाहिएं।

विधि आयोग ने परामर्श तथा प्रश्नावली का एक संक्षेप प्रेस के लिए भी तैयार किया था और उसे भी वेबसाइट पर उपलब्ध कराया गया था।

विधि आयोग को प्रश्नावली पर अनेक प्रत्युत्तर प्राप्त हुए। विधि आयोग ने उनके आधार पर आंकड़े तैयार किए जिनका उल्लेख इस रिपोर्ट में आगे के भाग में किया गया है। विधि आयोग ने 9 अगस्त, 2003 को इण्डियन इंस्टिट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, में एक संगोष्ठी का आयोजन भी किया जिस का उद्घाटन माननीय विधि और न्याय तथा वाणिज्य व उद्योग मंत्री श्री अरुण जेटली ने किया।

विधि आयोग को प्रसन्नता है कि इस विषय पर जनसाधारण ने व्यापक रूप से रुचि दर्शायी। न केवल प्रेस ने ही इसकी व्यापक पब्लिसिटी की अपितु कुछ समाचार पत्रों और मैगजीनों में लेख भी लिखे। (उदाहरण के लिए देखिए इण्डिया टुडे, 28 अप्रैल, 2003 तथा द टाइम्स आफ इण्डिया, 25 जुलाई, 2003)

प्रश्नावली के उत्तर जिन लोगों ने दिए उनमें महिलाएं भी सम्मिलित थीं तथा विभिन्न क्षेत्रों के अन्य लोग भी थे, जैसे, न्यायाधीश, अधिवक्तागण, चिकित्सक, सशस्त्रबल, केन्द्रीय पुलिस संगठन। ई-मेल द्वारा प्रत्युत्तर भारत और अन्य देशों से भी प्राप्त हुए। वर्तमान रिपोर्ट उक्त परामर्श पत्र और प्रश्नावली पर जनसाधारण के प्रत्युत्तरों पर तथा संगोष्ठी में हुए विचार-विमर्श पर आधारित है। संगोष्ठी में विधि आयोग ने एक पावर पोइंट प्रिजेन्टेशन भी रखा।

विधि आयोग की सिफारिशें अंत में दी गई हैं। मृत्यु दण्ड के निष्पादन के बारे में परामर्श पत्र का सारांश तथा प्रश्नावली इस रिपोर्ट के साथ उपाबंध-1 के रूप में संलग्न है।

17 LJ&CA/06—3

अध्याय 2

विभिन्न युगों में मृत्यु दण्ड के निष्पादन के ढंग

इस अध्याय में उन विभिन्न ढंगों और पद्धतियों की परीक्षा की गई है जो विभिन्न समाजों में सिद्धदोष व्यक्ति को मृत्यु या दण्डादेश के लिए प्रयुक्त रही हैं। यह अध्ययन दण्ड निष्पादनों के सभी ढंगों के बारे में संपूर्ण नहीं है अपितु केवल अनुसरित महत्वपूर्ण प्रणालियों को ही इसमें सम्मिलित किया गया है। मध्य युग से ही मृत्युदण्ड समस्त विश्व में एक सामान्य प्रणाली थी और अधिकांश अपराधों के लिए, जिनमें सम्पत्ति से संबंधित छोटे अपराध भी आते हैं, दोष सिद्धि के मामलों में अपनाई जाती थी और यह दण्ड दिया जाता था। इंग्लैण्ड में 18वीं शताब्दी के दौरान, अनेक विनिर्दिष्ट अपराधों के लिए, जिनकी संख्या लगभग एक सौ थी, मृत्युदण्ड दिया जाता था। मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के विभिन्न तरीके थे। मृत्यु दण्डादेश के अपराधों के निष्पादन की विभिन्न पद्धतियों में यातना देना, चिता पर जलाना, चक्र पर शरीर तोड़ना, धीरे-धीरे गला घोंटना, हाथी के पैर के नीचे कुचलना, पहाड़ से गिराना, तेल में उबालना, पत्थर मार-मार कर मार डालना आदि सम्मिलित थे। विभिन्न प्रजातांत्रिक देशों के संविधानों में सम्मिलित न्यायोचित प्रक्रिया से संबंधित विभिन्न सिद्धांतों के उदय के साथ-साथ और मानव अधिकार आंदोलन की तीव्र प्रगति के साथ-साथ ऐसे कठोर मृत्युदण्ड, जिनमें यातना का अंश रहता था, 18वीं शताब्दी से समाप्त होने लगे। सभी बड़े देशों में मृत्यु से दण्डनीय अपराधों की संख्या में कमी हो गई। इस विचार के साथ-साथ कि मृत्यु दण्डादेश के रूप में सजा त्वरित और दयापूर्ण होनी चाहिए, चाहे वह गिलोटीन द्वारा दी जाए अथवा फांसी, गलाघोंट या मुखिया की कुल्हाड़ी द्वारा दी जाए, त्वरित और दयापूर्ण होनी चाहिए। ऐसी शास्तियां भी, जिनमें यातना हो, लुप्त होने लगीं। मृत्युदण्ड की कुछ महत्वपूर्ण पद्धतियां निम्नलिखित हैं।[1]

(क) सूली पर लटकाना

व्यक्ति को लकड़ी के क्रॉस पर कीलों से ठोंकना और तब तक उसी दशा में छोड़ना जब तक उसकी मृत्यु न हो जाए, मृत्यु का दण्डादेश देने की पद्धति थी जो ईसा पूर्व समय में प्रचलित थी तथा ईसा मसीह को भी इसी रीति से सूली पर चढ़ाया गया था। यह मृत्युदण्ड की सबसे खूंखार पद्धति है और मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन का यह ढंग आज भी समस्त विश्व में अनेक देशों में पाया जाता है और प्रत्येक ईसाई चर्च के ऊपर क्रास का प्रतीक लगा रहता है।

(ख) चिता पर जलाना

"जलाना" ईसा काल से ही चला आ रहा है। चिता पर जलाना मृत्यु दण्डादेश तथा यातना का एक प्रचलित तरीका था जिसका प्रयोग अधिकांशतः साधुओं, चुड़ैलों और संदिग्ध स्त्रियों के लिए किया जाता था। 643 ई. में पोप ने एक आदेश जारी करके चुड़ैलों को जलाना अवैध घोषित कर दिया तथापि, अनेकों शताब्दियों के दौरान चुड़ैलों के मृत्यु का दण्डादेश के परिणाम स्वरूप लाखों स्त्रियों को चिता पर जलाया गया। सबसे पहले चुड़ैल तलाशी कार्यक्रम स्विट्जरलैण्ड में 1427 ई. में चला। 16वीं तथा 17वीं शताब्दियों के दौरान, जर्मनी, आस्ट्रिया, स्विट्जरलैण्ड, इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड और स्पेन में मृत्यु-समीक्षण के दौरान चुड़ैलों के मुकदमे आम बात रही। इसके शीघ्र पश्चात् यूरोप के कुछ भागों में तथा इंग्लैण्ड में चुड़ैलों के मुकदमे कम होने लगे और चुड़ैलों के लिए मृत्युदण्ड समाप्त कर दिया गया।

चिता पर जलाकर न्यायिक प्राण दण्ड की अंतिम घटना स्पेन मृत्यु-समीक्षण के अंत में सन् 1834 में घटी।

[1] वर्तमान विवरण का श्रोत द्वितीय श्रेणी के आंकड़े हैं। आयोग ने वर्तमान जानकारी के लिए विभिन्न आयोगों द्वारा, जैसे, न्यूयार्क कमीशन आफ इन्क्वारी 1888, रायल कमीशन आन केपीटल पनिश्मेन्ट 1949—1953 द्वारा किए गए अध्ययनों की विभिन्न रिपोर्टों, लेखों, पुस्तकों का आश्रय भी लिया गया है। अधिक जानकारी के लिए कृपया निम्नलिखित देखें—(1) स्कौट-स्टोरी आफ केपीटल पनिश्मेंट—ओक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस (एस सी जज लाइब्रेरी-वर्गीकरण सं. 343—253)।

(ग) चक्र

यातना और मृत्यु दण्डादेश की एक प्रणाली के रूप में चक्र का प्रयोग अनेक प्रकार से किया जा सकता था। व्यक्ति को चक्र की बाहरी रिम के साथ बांध दिया जाता था और तब नुकीले स्पाइकों पर उसे तब तक घुमाया जाता था या पर्वत से चक्र की ओर धकेल दिया जाता था जब तक कि उसकी मृत्यु न हो जाए। चक्र को टर्न टेविल की तरह लिटाकर व्यक्ति को उस पर बांध दिया जाता था। चक्र के घूमने पर लोग बारी बारी से अपराधी को लोहे की छड़ी से मारते थे, उसकी हड्डियां तोड़ देते थे और अंततः उसकी मृत्यु हो जाती थी। इस पद्धति का प्रयोग समस्त यूरोप में, विशेष रूप से मध्य युग के दौरान, होता रहा था।

(घ) गिलोटीन

सन् 1789 में फ्रांस में प्राणदण्ड का एक जन प्रचलित तरीका गिलोटीन तब हो गया जब डा. जोसिफ गिलोटीन ने यह प्रस्ताव रखा कि सभी अपराधियों को एक ही पद्धति से प्राणदण्ड दिया जाना चाहिए और उनकी यातना न्यूनतम होनी चाहिए। यह विचार किया गया कि सिर को काटना सबसे कम कष्टदाई और तत्समय प्रचलित प्राण्दण्ड की सबसे मानवतापूर्ण पद्धति थी। गिलोटीन का अर्थ था कि सिर काटने के लिए एक मशीन बनाई जाए। तदनंतर सिर काटने की मशीन का नाम उनके नाम पर रख दिया गया। मशीन का परीक्षण पहले भेड़ों और बछड़ों पर किया गया और तत्पश्चात् मानव पर किया गया। अंततः, अनेकों सुधारों और परीक्षणों के पश्चात् उत्कृष्ट ब्लेड बनाया गया और गिलोटीन के द्वारा पहला मृत्युदण्ड 1792 में दिया गया। फ्रांस विद्रोह के दौरान इसका व्यापक रूप से प्रयोग हुआ तथा वर्सिलीज के कारागार के बाहर अनेकों मृत्युदण्ड जनसाधारण के समक्ष दिए गए। राजा चार्ल्स I को इंग्लैण्ड में इसी रीति से मृत्यु दण्ड दिया गया था। जनसाधारण के समक्ष गिलोटीन के द्वारा अंतिम मृत्यु दण्ड फ्रांस में जून 1939 में दिया गया था। फ्रांस में गिलोटीन का अंतिम बार प्रयोग 1977 में हुआ और उसके पश्चात् शासकीय रूप से कोई प्रयोग नहीं किया गया है। गिलोटीन कम कष्टदाई है किन्तु आज उसे स्वीकार नहीं किया जाता क्योंकि वह असभ्य कालीन है और उसके प्रयोग से अपराधी का शरीर विकृत होता है। फ्रांस के यूरोपीय संघ में सम्मिलित हो जाने के पश्चात् फ्रांस में मृत्यु का दण्डादेश समाप्त हो गया।

(ङ) फांसी पर लटकाना और गलघोट

मृत्यु दण्ड के लिए उपलब्ध विभिन्न पद्धतियों में फांसी सबसे अधिक प्रचलित पद्धति थी। बंदी को फांसी का फंदा डालकर साधारण रूप से लटकाया जा सकता था जिसके कारण गर्दन टूटकर उसकी मृत्यु हो जाती थी। तथापि, यदि बंदी को यातना देने का आशय होता था तो फांसी का फंदा लगाकर लटकाने से भिन्न और भी पद्धतियां थी।

मध्य युग में, यदि किसी व्यक्ति को यातना देने का उद्देश्य होता था तो उसे घसीटा जाता था और तत्पश्चात् फांसी दी जाती थी। अत्यन्त गंभीर अपराधों की दशा में, जैसे गंभीर राजद्रोह, केवल फांसी देना पर्याप्त नहीं समझा जाता था। अतः बंदी को फांसी देने से पूर्व जीवित रहते ही उसके टुकड़े कर दिए जाते थे। यातना की एक और प्रचलित पद्धति गलघोट थी जो फांसी के ही समान थी। व्यक्ति की गर्दन के चारों ओर एक यंत्र, जैसे, रैक या गैग कस दिया जाता था जिससे धीरे-धीरे गला घुटता था, खिचांव पड़ता था और रक्त का बहाव अवरुद्ध हो जाता था। बंदी के मुंह में एक यंत्र भी रखा जा सकता था तथा उसकी गर्दन की चारों ओर एक जंजीर बांध दी जाती थी जिससे कि यंत्र यथास्थान रहे।

[2] द लाइब्रेरी आफ क्रिमीनालोजी, एलिजाबेथ ओरमेन टटिल, लंदन स्वीवेन्स, सोर्स ल्यूइट, शिकागो, क्वेड बुक्स 1961 (3) एडमिनिस्ट्रेशन आफ डेथ पेनल्टी इन यू एस—इन्टर नेशनल कमीशन आफ ज्यूरिस्ट्स रिपोर्ट आफ मिशन, जून 1996 देखिए—

संबंधित वेबसाइट
1. http://lastmilc.inftvkitten.com/intoduction.html.
2. http//worldbook.bigehalk.coml320440.htm
3. http//cehat.org/publications/cdoe.html
4. http//www. deathrowbook com

फांसी मृत्यु दण्ड की प्रधीन पद्धतियों में से एक है और आज भी इसका प्रयोग कुछ देशों में मृत्यु दण्ड के लिए किया जाता है। डेला वेयर, न्यू हेम्पशायार तथा वाशिंगटन में फांसी मृत्यु दण्ड के लिए प्राधिकृत है किन्तु यह इस पर निर्भर है कि सिद्धदोष व्यक्ति सजा तारीख पर किस पद्धति को चुनना चाहता था, फांसी को अथवा प्राणांतक इन्जेक्शन को। 1976 में यूनाइटेड स्टेट्स में तीन व्यक्तियों को फांसी दी गई। फांसी से पहले व्यक्ति का वजन लिया जाना चाहिए। ''लटकन'' (ड्राप) बंदी के भार पर आधारित होनी चाहिए और इतनी होनी चाहिए कि गर्दन पर 1260 फुट पाउण्ड का बल आ जाए। बंदी के भार को, जो पाउंडों में लिया जाता है, 260 से विभाजित कर दिया जाता है जिससे कि लटकन (ड्राप) की लम्बाई फुटों में निकाली जा सके। तत्पश्चात् सिद्धदोष की गर्दन के चारों ओर फंदा डाला जाता है जो उसके बांये कान के पीछे की ओर रहता है जिसके कारण गर्दन टूट जाती है। उसके पश्चात् ट्रेप का दरवाजा खोला जाता है और सिद्धदोष ट्रैप से लटकाया जाता है। यदि फांसी ठीक प्रकार से दी जाए तो तीसरी और चौथी सर्वाइकल वर्टीब्रा के टूट जाने के कारण अथवा श्वास अवरोध के कारण मृत्यु हो जाती है। नापने की यह प्रक्रिया यह सुनिश्चित करने के लिए है कि मृत्यु तत्काल हो जाए और कम से कम चोट पहुंचे। यदि नाप सावधानी पूर्वक नहीं लिया जाता और योजना नहीं की जाती तो उसके परिणाम स्वरूप प्रायः गला घुट जाता है रक्त का बहाव अवरुद्ध हो जाता है या सिर धड़ से अलग हो जाता है। तथापि, चिकित्सा शास्त्र और न्याय शास्त्र के अधिकांश लेखकों के अनुसार फांसी देने से श्वास अवरोध या दम घुटने के परिणामस्वरूप मृत्यु हो जाती है तथा गर्दन की हड्डी का टूटना एक अपवाद मात्र है (चाहे न्यायिक फांसी में हो अथवा आत्मा घाती फांसी में हो)।

(च) मुखिया की कुल्हाड़ी

16वीं तथा 17वीं शताब्दियों के दौरान जर्मनी तथा इग्लैण्ड में मृत्यु दण्ड का यह स्वरूप अत्यन्त प्रचलित था क्योंकि सिर विच्छेद को मृत्यु दण्ड का सबसे अधिक मानवीय रूप समझा जाता था। इस प्रणाली में जल्लाद, जो प्रायः एक हुड पहने रहता था, अपराधी के सिर को कुल्हाड़ी या तलवार से काटकर अलग कर देता था। यूनाइटेड किंगडम में सबसे अंतिम बार सिर काटकर मृत्यु दण्ड 1747 में दिया गया। तत्पश्चात् और मृत्यु दण्ड समाप्त हो जाने से पूर्व तक, मावनतावाद में अधिक रुचि के कारण, मृत्यु दण्ड शताब्दियों पूर्व प्रचलित यातना और सिर काटने की अपेक्षा कम घृणित रह गया। प्राणांतक इन्जेक्शन और बिजली का करंट लगाना अनेकों देशों में मृत्युदण्ड की पद्धतियों के रूप में पंसद किए जाने लगे हैं क्योंकि जनसाधारण को यह पद्धति कम दुःखदाई और अधिक दयालुतापूर्ण प्रतीत होती हैं।

(घ) शूट करने वाला दस्ता

शूट करने वाले दस्ते द्वारा प्राणदण्ड के बारे में कोई नियत प्रक्रिया नहीं है। प्रायः सिद्धदोष को हाथ पीछे करके एक पोल के साथ बांध दिया जाता है, आंखों पर पट्टी लगा दी जाती है तथा उसके हृदय पर कपड़े का एक टुकड़ा लगा दिया जाता है अथवा सिद्धदोष को एक कुर्सी पर बांध दिया जाता है। अधिकांश मामलों में पांच व्यक्तियों की एक टीम का उपयोग सिद्धदोष के हृदय पर निशाना लगाने के लिए किया जाता है। कुछ देशों में कुछ बंदूकों में नकली गोलियां डाली जाती हैं और शूट करने वालों को इस बारे में नहीं बताया जाता है जिससे कि वह व्यक्ति अज्ञात रहे जो वास्तव में मारने वाला है। अनेक देशों में जैसे रूस और पूर्वी देश, जैसे चीन, थाईलैंण्ड इस पद्धति का प्रयोग करते हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि भारत में भी शूट करने की अनुमति है किन्तु यह तब जब मृत्यु का दण्डादेश सेना न्यायालय (कोर्ट मार्शल) द्वारा दिया जाए। (आगे इस विषय में विस्तृत चर्चा की गई है)। युनाइटेड स्टेट्स के कुछ राज्यों में जैसे, सूटा तथा ओकलाहामा में सिद्धदोष को यह चुनने का अवसर दिया जाता है कि उसे मृत्यु दण्डादेश शूटिंग करने वाले द्वारा गोली चलाकर दिया जाए अथवा प्रणांतक इन्जेक्शन द्वारा। यूटा में गेली गिलमोर को 1977 में तथा जॉन टेलर को 1996 में शूट करने वाले दस्ते द्वारा मृत्यु दण्ड दिया गया था।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि जर्मनी के तृतीय रीष नेतागणों से, जिन्हें न्यूरमवर्ग के विचारणों में फांसी द्वारा मृत्यु का दण्डादेश दिया गया था, पूछा गया था कि क्या वे मृत्यु दंण्ड का निष्पादन शूट करने वाले दस्ते के हाथों चाहेंगे क्योंकि फांसी एक अपमानजनक पद्धति थी और उक्त नेताओं ने फौजी मृत्यु को चुना। इससे यह प्रकट होता है कि फांसी के द्वारा मृत्यु दण्ड एक सम्मानजनक पद्धति नहीं है।

(ज) गैस चेम्बर

प्राणंतक गैस के तरीके से मृत्युदण्ड की दशा में बंदी को एक वायुरोधी चेम्बर में अवरुद्ध और सील कर दिया जाता है। संकेत दिए जाने पर निष्पादक एक वाल्ब खोल देता है जिससे हाइड्रोक्लोरिक एसिड एक कढ़ाई में बहने लगता है। दूसरा संकेत मिलने पर, या तो पोटाशियम साइनाइट या सोडियम साइनाइट के कण उक्त एसिड में मशीन द्वारा डाल दिए जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप हाइड्रोसाइनिक गैस उत्पन्न हो जाती है। हाइड्रोसाइनिक गैस शरीर में रक्त के हेमाग्लोबीन को प्रसंस्कृत करने की शरीर की सामर्थ्य को नष्ट कर देती है और यदि बंदी गहरी सांस लेता है तो कुछ ही क्षणों में बेहोशी हो जाती है। किन्तु यदि वह अपनी सांस रोक लेता है तो मृत्यु में देर लगती है और बंदी को प्रायः भयानक दौरे पड़ने लगते हैं। मृत्यु होने में प्रायः छह से अठारह मिनट लग जाते हैं। मृत्यु की घोषणा हो जाने के पश्चात् चेम्बर को कार्बन तथा न्यूट्रल करने वाले फिल्टरों का प्रयोग करने साफ कर दिया जाता है। गैस मास्क पहने हुए कर्मीदल ब्लीच के घोल से शरीर को विसंक्रमित करता है और मृतक को बाहर लाने से पहले चेम्बर को गैस मुक्त कर दिया जाता है। यदि इस प्रक्रिया को न किया जाए तो शव को कब्जे में लेने वाला व्यक्ति या शव की बाबत कोई कार्यवाही करने वाला व्यक्ति मर सकता है। नेवडा पहला राज्य था जिसमें गैस चेम्बर के प्रयोग की मंजूरी दी गई थी और प्राणांतक गैस द्वारा पहला मृत्यु दण्ड फरवरी, 1924 में दिया गया था। यह पद्धति मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन का एक माध्यम रही है और 31 बार इस पद्धति से मृत्यु दण्ड दिया गया है। यू.एस.ए. में पांच राज्यों ने प्राणांतक इन्जेक्शन के स्थान पर गैस चेम्बर के प्रयोग की अनुमति दी है। इन राज्यों के नाम है एरीजोना, केलीफोर्निया, मेरीलैण्ड, मिसूरी तथा वायोमिंग। अधिकांश मामलों में बंदी को मृत्यु दण्ड की पद्धति चुनने की अनुमति दी जाती है और यह उसके दण्डादेश की तारीख पर निर्भर करता है। यूनाइटेड स्टेट्स में 1976 में 11 व्यक्तियों को प्राणांतक गैस द्वारा मृत्यु दण्ड दिया गया था। तथापि, यह पद्धति व्ययपूर्ण तथा क्लिष्ट है। इस पद्धति से इस दुःखदाई तथ्य की ओर भी ध्यान जाता है कि हजारों यहूदियों को नाजी जर्मनी ने गैस चेम्बर में डालकर मारा था।

(झ) बिजली करेंट लगा कर मृत्यु

बिजली की कुर्सी का प्रयोग करके इस अनौखे प्राणांतक ढंग में बंदी को एक विशेष प्रकार से बनाई गई कुर्सी पर बांध दिया जाता है, उसके सिर और शरीर के बाल हटा दिए जाते हैं जिससे कि तांबे के इलेक्ट्रोडों को शरीर के साथ लगाया जा सके। प्रायः तीन या अधिक दण्ड निष्पादक बटन दबाते हैं किन्तु विद्युत के वास्तविक स्रोत का कनेक्शन उनमें से किसी एक में होता है। वास्तविक निष्पादक का पता नहीं लग पाता है। हर राज्य में, झटके देने के लिए भिन्न-भिन्न बोल्टेज का प्रयोग किया जाता है और उसका अवधारण सिद्धदोष व्यक्ति के शरीर के भार के अनुसार किया जाता है। पहले झटके के पश्चात् कम बोल्ट के अधिक झटके लगते हैं। जॉर्जिया राज्य में दण्ड-निष्पादक पहले चार सैकिण्ड तक 2000 बोल्ट के झटके देते हैं, अगले सात सैकिण्ड तक 1000 बोल्ट के झटके और तत्पश्चात् 208 बोल्ट के झटकें देते हैं। बिजली के करेन्ट का शरीर पर प्रत्यक्ष रूप से नष्टकारी प्रभाव पड़ता है क्योंकि आंतरिक अंग जल जाते हैं। स्विच ऑन किए जाने पर झटके लगने से बंदी प्रायः आगे की ओर झुक जाता है। शरीर का रंग बदल जाता है, सूजन आ जाती है और आग भी लग सकती है। बंदी का पेशाब निकल जाता है और खून की उल्टी भी हो सकती है। मृत्यु दण्ड के लिए पहली बिजली की कुर्सी की डिजाइन जार्ज बेस्टिंग हाउस ने शताब्दी के आरम्भ में तैयार की थी। न्यूयार्क सिटी करेक्शनल संस्था ने बेस्टिंग हाउस के समक्ष बिजली की कुर्सी डिजाइन करने का प्रस्ताव रखा था क्योंकि अधिकांश व्यक्तियों को ऐसा लगा था कि फांसी लगा कर मृत्यु दण्ड देने का वर्तमान ढंग बहुत अमानवीय तथा पुराना था। बेस्टिंग हाउस ने करेक्शनल संस्था को बताया कि कुर्सी में विद्युत का स्रोत इतना घातक था कि एक हजार बोल्ट के झटके से प्राण अंत होने में केवल 5 सैकण्ड लग सकते थे। तथापि, मृत्युदण्डित पहले व्यक्ति की मृत्यु 5 सैकिण्ड में नही हुई थी अपितु निरंतर विद्युत देने पर मृत्यु में चार मिनट का समय लगा था और उसके बाद ही व्यक्ति को अंतिम रूप से मृत घोषित किया गया था। इन चार मिनटों के दौरान सिद्धदोष के शरीर से धुआं निकलने लगा था, उसकी बाहों व सिर के बालों से ज्वाला उठने लगी था तथा उसके चेहरे के हर हिस्से से रक्त लटकने लगा था। इस प्रदर्शन के पश्चात् बिजली की कुर्सी को सफल नहीं समझा गया। आज बिजली की कुर्सी को आधुनिक बना दिया गया है और यू.एस.ए. के 11 राज्यों में इसका प्रयोग किया जाता है। यू.एस.ए. के अरकन्सास, केन्टकी, ओहियो, ओकलाहोमा, साउथ केरोलीना, चेनेसी और वर्जिनिया के राज्यों में

प्राणांतक इन्जेक्शन तथा बिजली के करेन्ट द्वारा मृत्युदण्ड, दोनों ही, प्राधिकृत हैं और बंदी को इन पद्धतियों में से किसी एक को चुनने की अनुमति है। अलवामा, फ्लोरिडा, जियोर्जिया और नेब्रासिकी में केवल बिजली के करेन्ट को ही प्राणदण्ड की एकमात्र पद्धति के रूप में अपनाया गया है। 1976 से अब तक 144 व्यक्तियों को विद्युत कुर्सी द्वारा मृत्यु दण्ड दिया गया है।

(ञ) प्राणांतक इन्जेक्शन

प्राणांतक इन्जेक्शन द्वारा मृत्यु के लिए तीन विभिन्न औषधियों की प्राणांतक मात्रा में नसों में दिए जाने वाले इन्जेक्शन लगाए जाते हैं। बंदी को एक गरनी पर बांध दिया जाता है और उसके घुटनों तथा बाजुओं को कस दिया जाता है। उसके शरीर के साथ एक हृदयगति मापक मोनीटर और स्टेथेस्कोप जुड़ जाते हैं और प्रत्येक भुजा में दो नसों में जाने वाली सेलीन की लाइनें जोड़ दी जाती हैं। बंदी को एक चादर से ढक दिया जाता है। नसों में जाने वाली सेलीन की लाइनें बंद कर दी जाती हैं और सोडीयम थीयोपेन्टल प्रविष्ट किया जाता है जिससे कि बंदी गहरी निद्रा में चला जाता है। इसके पश्चात् एक दूसरा द्रव पेन्क्यूरोनीय ब्रोमाइड दिया जाता है जो कि मांस पेशियों को शिथिल कर देता है। इसके कारण उसकी श्वास प्रणाली और फेंफड़ों का कार्य बंद हो जाता है और परिणामस्वरूप श्वास बंद हो जाती है। अंत में, पोटाशीयम क्रोराइड का इन्जेक्शन दिया जाता है जिससे कि हृदय बंद हो जाता है।

1976 के पश्चात् अनेकों बंदियों को यूनाइटेड स्टेट्स में प्राणांतक इन्जेक्शन द्वारा मृत्यु दण्ड दिया गया है। आजकल यूनाइटेड स्टेट्स में प्राणांतक इन्जेक्शन मृत्यु दण्ड की सबसे अधिक प्रचलित पद्धति है और 2001 के दौरान प्राणदण्ड के सभी 66 मामलों में इसी पद्धति से मृत्यु दण्ड दिया गया है। सन् 2000 तक अमेरिका में 749 मृत्युदण्डों को प्राणांतक इन्जेक्शन द्वारा ही पूरा किया गया है जिनमें 7 महिलाएं भी थीं। सन् 2000 में चीन में प्राणांतक इन्जेक्शन द्वारा 8 मृत्यु दण्ड दिए गए।

प्राणांतक इन्जेक्शन का मृत्यु दण्ड के रूप में प्रयोग करने के बारे में सर्वप्रथम सन् 1888 में विचार किया गया था जब न्यूयार्क के श्री जे. माउन्ट ब्लेयर एम.डी. ने चिकित्सा विधि की एक पत्रिका में एक लेख लिखकर सुझाव दिया कि मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के लिए छह ग्रेन मोरफीन का नसों में दिया जाने वाला इन्जेक्शन उपयोग में लाया जाना चाहिए। उस समय यह विचार स्वीकार नहीं किया गया और न्यूयार्क में उसके स्थान पर बिजली की कुर्सी का उपयोग आरम्भ किया गया (जो न्यूयार्क कमीशन आफ इनक्वारी 1888 के निष्कर्षों पर आधारित था)। इन्जेक्शन का प्रस्ताव पुन: डाक्टर स्टानले ड्यूश ने 1977 में रखा जो उस समय ओकलाहोमा विश्वविद्यालय मेडीकल स्कूल के निश्चेतना विज्ञान विभाग के अध्यक्ष थे। ओकलाहोमा राज्य के सीनेटर श्री बिल डाउसन की इस मांग के प्रत्युत्तर में कि राज्य द्वारा प्रयुक्त बिजली की कुर्सी को मरम्मत कराने की अपेक्षा कोई सस्ता उपाय अपनाया जाए, श्री ड्यूस ने नसों में ड्रिप द्वारा औषधियां प्रविष्ट करके शीघ्र और कष्ट रहित मृत्यु के उपाय का वर्णन किया। श्री ड्यूस ने सीनेटर बिल डाउसन को लिखा कि "लगभग 20 वर्ष तक अल्ट्रा अल्प कार बार्बी ट्यूरेट का अनेक अवसरों पर निश्चेतना के लिए प्रयोग करने पर तथा इन औषधियों को देने के आधार पर मैं आपको आश्वस्त कर सकता हूं कि यह निश्चेतना करने का एक त्वरित और दु:ख रहित उपाय है।" और इस प्रकार से ओकलाहोमा, यू.एस.ए. वह प्रथम राज्य था जिसने इसके पक्ष में सन् 1977 में कानून बनाया। उसी वर्ष टेक्सास में तद्नतर वैसा ही कानून बना कर बिजली की कुर्सी के स्थान पर पहला मृत्यु दण्ड 7 दिसम्बर 1982 को प्राणांतक इन्जेक्शन की पद्धति से निष्पादित किया गया और चार्ल्स ब्रुक नामक व्यक्ति को खून के अपराध में मृत्यु दण्ड दिया गया। यहां यह उल्लेख करना सुसंगत होगा कि इस मृत्यु दण्ड की प्रक्रिया क्या थी। प्रक्रिया प्रात: 12.07 बजे आरम्भ हुई। 23 : 16 बजे (प्रात:) उसे मृत प्रमाणित कर दिया गया। प्रत्यक्ष रूप से कोई समस्या सामने नहीं आई और ऐसा लगा कि ब्रुक पूरी आसानी से मृत्यु को प्राप्त हो गया। पहले उसने अपना सिर उठाया, मुट्ठियां कसी और ऐसा प्रतीत हुआ कि उसने जम्हाई ली या सांस के लिए मुंह खोला और तत्पश्चात् बेहोश हो गया। आजकल 36 अमरीकी राज्यों में या तो एक मात्र पद्धति के रूप में अथवा पारम्परिक पद्धतियों में से एक विकल्प के रूप में प्राणांतक इन्जेक्शन का प्रयोग किया जा रहा है। ये राज्य एरीजोना, अरकन्सास, केलीफोर्निया, कोलोराडो, कनेक्टीकट, डेलावेयर, फ्लोरिडा, ईडाहो, इलीनोइस, इंडियाना, कन्सास, केन्टकी, लुइसीयाना, मेरीलैण्ड, मिसीसिपी, मिसूरी, मोन्टाना,

नेब्रास्का, नेवाडा, न्यू हेम्पशायर, न्यूजर्सी, न्यू मेक्सिको, न्यूयोर्क नार्थ, केरोलीना, ओहीओ, ओकलाहोमा, ओरेगोन, पेन्सिलवानिया, साउथ केरोलीना, साउथ डकोटा, टेनीसी, टेक्सास, यूटा, वर्जीनिया, वाशिगंटन तथा वायोमिंग है।

फिलीपीन ने भी भविष्य में बिजली की कुर्सी के स्थान पर प्राणांतक इन्जेक्शन द्वारा मृत्यु दण्ड का निर्णय लिया है और 1975 के पश्चात् इस प्रणाली से पहला मृत्यु दण्ड लियो एमीगेरे को, बच्ची के साथ बलात्कार करने के लिए 4 फरवरी, 1999 को दिया गया तथा सन् 2000 के अंत तक इस पद्धति से छह और व्यक्तियों को भी मृत्यु दण्ड दिया गया है। ग्वेटमाला ने भी 1996 में शूटिंग दस्ते द्वारा मृत्यु दण्ड के पश्चात् प्राणांतक इन्जेक्शन को अपना लिया है तथा 3 मृत्यु दण्ड इस पद्धति से दिए गए हैं। चीन भी प्राणांतक इन्जेक्शन का प्रयोग कर रहा है यद्यपि वहां अधिकांश मृत्यु दण्ड शूटिंग के द्वारा ही दिए जा रहे हैं। परिणामत: आज प्राणांतक इन्जेक्शन द्वारा ही मृत्यु दण्ड देने के पक्ष में हवा है।

अध्याय 3

यू.एस.ए. में संघीय मृत्यु दण्ड का निष्पादन तथा उसके विभिन्न राज्यों में मृत्यु दण्ड की अनोखी प्रक्रिया

संघीय मृत्यु दण्ड

अमरीका के फेडरल ब्यूरो आफ प्रिजन्स के पास टेलीहोटे, इंडियाना में संघीय कारागार में प्रणांतक इन्जेक्शन की सुविधा है। मृत्यु दण्ड की व्यवस्था एक सामान्य ईंट के बने भवन के अंदर है जो मुख्य कारागार के परिसर के बाहर है और इसमें मृत्यु दण्ड चेम्बर के चारों ओर पांच दर्शक कक्ष हैं। चेम्बर वस्त्रविहीन है और हरी टयलों से जुड़े हुए अस्पताल के कमरे के समान है और उसमें केवल एक बड़ी गरनी है जिसमें पांच बेलक्रो पेटियां तथा एक कोने में एक सिन्क लगा है। नस प्रवेशी ट्यूबें दीवाल में एक छोटे से छिद्र से होकर निकटवर्ती मृत्यु दण्ड कक्ष में जाती हैं। केवल एक कमरे में, दण्ड निष्पादक के कमरे में, दो तरफा खिडकियां हैं जिन पर परदे लगे हैं। दण्ड निष्पादक के कमरे में एक तरफा शीशा जड़ा हुआ है। मृत्यु दण्ड के दौरान कारागार के अधिकारी एक फोन लाइन पर रहते हैं जो वाशिंगटन में न्याय विभाग से जुड़ा हुआ है जिससे कि अमेरिका के राष्ट्रपति, जिनके पास क्षमादान का प्रावधान है, अंतिम क्षण में भी क्षमा प्रदान कर सकें। ऊपर की ओर एक कैमरा है जो दण्ड निष्पादक के कमरे के भीतर मोनीटर से जुड़ा हुआ है और जिससे दण्ड की प्रक्रिया को यह ध्यान रखने के लिए देखा जा सकता है कि बंदी को मृत्यु दण्ड के दौरान कष्ट हो रहा है या नहीं। 11 जून 2001 को त्रिमोथी मेकवे, ओलाहोमा नगर का बोम्बर, पहला व्यक्ति था जिसे 1963 के पश्चात् संघीय कानून के अंतर्गत मृत्यु का दण्डादेश दिया गया था। उसने अल्फरेड पी मुरा संघीय भवन के बाहर बम रखा था जिसके कारण 168 व्यक्तियों की मृत्यु हुई थी और 850 व्यक्ति घायल हुए थे। मेकवे के दाहिने पैर में लगाए गए केथीडर से होकर प्राणांतक औषधि 8.10 मिनट पर प्रात: डाली गई, दूसरी 8.11 बजे और अंतिम 8.13 बजे डाली गई और उसे 8.14 मिनट पर मृत घोषित कर दिया गया। समस्त प्रक्रिया में केवल 2 मिनट लगे। 19 जून को ज्वान राउल गर्जा को, जो कि मेक्सिको—अमरीका का मादक द्रवों का मालिक भी था, उसी कुर्सी पर मृत्यु दण्ड दिया गया। अमरीका की सेना ने भी (फांसी के स्थान पर) प्राणांतक इन्जेक्शन को अपनाया है और अब उसके पास लीवन वर्थ, कंसास, के किले में स्थित सेना कारागार के बेसमेंट में यह सुविधा है और वहां इस समय 6 या 7 व्यक्ति रह रहे हैं।

विभिन्न राज्यों में मृत्यु दण्ड का निष्पादन

प्राणांतक इंजेक्शन की प्रक्रिया (जो गोपीनीय प्रकृति की है) हर राज्य में भिन्न-भिन्न है। बंदी को एक गरनी (जो कि अस्पताल में प्रयुक्त किस्म की पहिएदार ट्राली के पलंग की तरह है) के साथ कस दिया जाता है अथवा ओपरेशन थिएटर की मेज के समान एक मेज पर चमड़े की या बुनी हुई रस्सियों से शरीर व पैरों पर कस दिया जाता है। उसकी नंगी भुजाओं को गरनी के दोनों ओर निकले हुए बोर्डों के साथ पट्टियों से बांध दिया जाता है। तत्पश्चात् शिक्षित तकनीकविद् प्रत्येक भुजा में एक नस में केथीटर डाल देते हैं जो कि वास्तव में अत्यन्त साधारण प्रक्रिया है। केथीटरों के यथास्थान लग जाने पर सेलीन के घोल की वाहक ट्यूबें केथीटर के सिरों के साथ जोड़ दी जाती हैं और बंदी को मृत्यु दण्ड चेम्बर में पहियों वाली कुर्सी पर ले जाया जाता है और चेम्बर के परदे खींच दिए जाते हैं जिससे कि साक्षी प्रक्रिया को देख सकें। सिद्धदोष व्यक्ति जब अपना अंतिम वक्तव्य दे चुकता है तब कारागार का वार्डन मृत्यु दण्ड आरंभ करने का संकेत देता है और तकनीकविद्, जो कि नजर में नहीं आते हैं और दो तरफा शीशे के पीछे होते हैं, तीनों औषधियों को 15-50 सीसी सोडीयम थियापेन्टल, 15-50 सीसी पवयूलोन (जो पेन्क्यूरोनियम ब्रोमाइड का सामान्य नाम है) और 15-50 सीसी पोटाशियम क्लोराइड के इन्जेक्शन हाथ में लगाते हैं। हर द्रव

के लगाने के बीच थोड़ा अंतर रहता है और उस अंतर के दौरान सेलीन के घोल का इन्जेक्शन दिया जाता है जिससे कि नस साफ रहे और ऐसा कोई रासायनिक दुष्परिणाम न हो और जो नस को बंद न कर दे।

वास्तविक इंजेक्शन लगाने में 5 मिनट लगते हैं। सोडीयम थियापेन्टल एक अल्पकारक बार्बीक्यूरेट है जिससे अत्यन्त शीघ्र बेहोशी हो जाती है। पवयूलोन मांसपेशियों को शिथिल करने वाली औषधि है जो डाईफार्म को बंद कर देती है और सांस रुक जाती है और पोटाशियम क्लोराइड ह्दय गति को बंद करके काम समाप्त कर देता है। अधिकांश मामलों में बंदी सोडीयम थियापेन्टल के इन्जेक्शन के पश्चात् एक मिनट के भीतर ही बेहोश हो जाता है और लगभग 8 मिनट के अंदर उसकी मृत्यु हो जाती है और किसी शारीरिक कष्ट के चिन्ह प्रकट नहीं होते। कुछ राज्यों में एक पूर्ण रूप से स्वचालित प्राणांतक इंजेक्शन मशीन का प्रयोग किया जाता है जो 12 बोल्ट की बैटरी से चलती है। यह मशीन केथीटर सही स्थान पर लगने के पश्चात् ठीक क्रम में और मात्रा में औषधियों को प्रविष्ट करती है। मशीन में छह सिरिन्ज रहती हैं जो मशीनी प्रक्रिया से चलती हैं। तीन सिरिन्जों में प्राणांतक सिरिन्ज रहती है तथा अन्य तीन में नुकसान न पहुंचाने वाला सेलीन घोल रहता है। दो बटन मशीन को नियंत्रित करते हैं जिनमें से एक प्राणांतक सिरिन्जों के लिए और दूसरा सदृश्य नुकसान रहित घोल के लिए होता है। दो दण्ड निष्पादक बटन को दबाते है और सिरिन्जों में से औषधि नस में चली जाती है। इस प्रकार से सिद्धदोष व्यक्ति को एक त्वरित तथा पीड़ा रहित पद्धति से बेहोशी में ही में ही मृत्यु की गोद में सुला दिया जाता है।

अध्याय 4

भारत में मृत्यु दण्डादेश का निष्पादन

भारत में मृत्यु दण्डादेश का निष्पादन दो पद्धतियों से किया जाता है, अर्थात्, गर्दन में फांसी लगा कर और शूट करके। विभिन्न राज्यों के जेल मेनुअलों में भारत में मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन की पद्धति के लिए उपबंध हैं। जैसे ही मृत्यु का दण्डादेश सुना दिया जाता है और उसकी पुष्टि कर दी जाती है तथा जो भी संभव और उपलब्ध अनुतोष हैं वे चुक जाते हैं तब दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 354(5) के अनुसार, अर्थात्, गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाया जाना जब तक मृत्यु न हो जाए, दण्ड का निष्पादन किया जाता है। वायु सेना अधिनियम, 1950, सेना अधिनियम, 1950 और नौ सेना अधिनियम, 1957[2] के अंतर्गत यह भी उपबंधित है कि मृत्यु दण्डादेश का निष्पादन या तो गर्दन में फांसी लगा कर तब तक लटकाया जाना जब तक मृत्यु न हो अथवा शूट करके मृत्यु द्वारा दिया जाएगा (जैसा कि विस्तार के साथ नीचे स्पष्ट किया जा रहा है)।

(क) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 तथा जेल मैन्युअल

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1888 की धारा 368(1) में गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाना जब तक मृत्यु न हो जाए, उपबंधित था। इसमें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 द्वारा संशोधन किया गया है। धारा 354(5) निम्नलिखित रूप में हैं :—

"जब किसी व्यक्ति को मृत्यु का दण्डादेश दिया जाता है तो वह दण्डादेश यह निदेश देगा कि उसे गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाया जाए जब तक उसकी मृत्यु न हो जाए।"

भारत में गत सौ वर्षों से अधिक के दौरान, दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत, मृत्यु दण्डादेश का निष्पादन, गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाया जाना है जब तक मृत्यु न हो जाए। मृत्यु दण्डादेश का निष्पादन दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 354(5) तथा विभिन्न राज्यों के जेल मैनुअलों के अनुसार किया जाता है। उदाहरण के लिए, पंजाब और हरियाणा जेल मैनुअल के अध्याय 31 में मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के विभिन्न ढंगों का उपबंध किया गया है :—

"पैरा 847(1) मृत्यु दण्डादेश वाले बंदी की, दण्डादेश के पश्चात् कारागार में आने के तुरंत बाद, अधीक्षक के आदेश से तलाशी ली जाएगी। वे सभी वस्तुएं जिन्हें उपाधीक्षक बंदी के पास छोड़ना खतरनाक या समीचीन समझता है उसके पास से ले ली जाएंगी।"

"पैरा 847(2) ऐसे प्रत्येक बंदी को सभी अन्य बंदियों से पृथक एक सैल में बंद रखा जाएगा और दिन-रात उसे एक गार्ड के प्रभार में रखा जाएगा।"

[2] वायु सेना अधिनियम, 1950 के अध्याय 6 की धारा 34 में उन अपराधों का उल्लेख किया गया है जिनके लिए शत्रु को मृत्यु का दण्डादेश दिया जा सकता है। धारा 37 अपराधी के दोषसिद्ध होने की दशा में मृत्यु का दण्डादेश देने का उपबंध करती है। अध्याय 7 में विभिन्न दण्डों का उपबंध है और सक्षम सेना न्यायालयों को ऐसे दण्ड देने की सिफारिश करने के लिए सशक्त किया गया है। धारा 73 में सेना न्यायालय द्वारा दिए जाने वाले दण्डों का उपबंध है। अध्याय 12 में पुष्टि और पुनरीक्षण के उपबंध दिए गए है। अध्याय 13 में दण्डों के निष्पादन के लिए उपबंध हैं और इसके अंतर्गत धारा 163 का संबंध मृत्यु दण्ड के स्वरूप से है। मृत्यु का दण्डादेश देने से संबंधित सेना अधिनियम 1950 के उपबंध अध्याय छह में है। धारा 34(क) से (ठ) तक का संबंध शत्रु से संबंधित उन अपराधों से है जो मृत्यु से दंडनीय हैं, धारा 37 का संबंध राजद्रोह से है और सिद्धदोष होने पर अपराधी को मृत्यु दण्डादेश देने की व्यवस्था की गई है। अध्याय 7 का संबंध सेना न्यायालयों द्वारा दिए जाने वाले दण्डों से है। अध्याय 12 दण्डों की पुष्टि और पुनरीक्षण से संबंधित है, अध्याय 13 दण्डों के निष्पादन के बारे में है। धारा 166 का संबंध मृत्यु दण्ड के स्वरूप से है। नौसेना अधिनियम, 1957 की धारा 147 में मृत्यु दण्ड के स्वरूप का उपबंध है।

कारागार में बंदी के इस प्रकार से प्रवेश के पश्चात् उप-अधीक्षक से अपेक्षा की जाती है कि वह सैल की जांच करे और अपना यह समाधान करे कि वह सुरक्षित है और उसमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे बंदी हथियार या औजार के रूप में आत्म हत्या करने के लिए प्रयोग में ला सकता है। उप-अधीक्षक यह भी सुनिश्चित करेगा कि सैल में ऐसी और कोई वस्तु नहीं हैं जिसका वहां रहने देना उसकी राय में असमीचीन है।

"पैरा 848 **सैल की जांच**—प्रत्येक ऐसे सैल की, जिसमें मृत्यु दण्डादेश वाले किसी सिद्धदोष को किसी समय बंद रखा जाना हो, सिद्धदोष को उसमें रखने से पूर्व, उप-अधीक्षक या इस निमित्त किसी अन्य अधिकारी द्वारा जांच की जाएगी और वह अपना यह समाधान करेगा कि सैल सुरक्षित है और उसमें किसी प्रकार की ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसकी बंदी द्वारा अपराध के हथियार के रूप में या ऐसे औजार के रूप में उपयोग किए जाने की संभावना है और वह उसका उपयोग आत्महत्या करने के लिए कर सकता है और जिसका ऐसे सैल में रहने देना अधीक्षक की राय में असमीचीन है।"

मैनुअल में वस्त्र आदि के उपयोग के बारे में विभिन्न पाबन्दियां हैं। पैरा 857 में यह उपबंध है कि सिद्धदोष बंदी को मूझ की चटाई या भव्वर चटाई नहीं दी जाएगी। इस खण्ड का आशय ऐसी किसी वस्तु की उपस्थिति से बचाव है जिसका उपयोग बंदी आत्महत्या करने के लिए औजार के रूप में कर सकता है।

"**पैरा 851.** मूझ की चटाई न देना—सिद्धदोष को अन्य सिद्धदोषों के समान वस्त्र, बिस्तर और अन्य आवश्यक वस्तुएं दी जाएगी। मूझ की चटाई नहीं दी जाएगी और उसके स्थान पर एक अतिरिक्त कम्बल दिया जाएगा।"

पैरा 854 यह उपबंध करता है कि बंदी को निरन्तर गार्ड की निगरानी में रखा जाएगा और यह भी कि उसे किसी अन्य व्यक्ति से, सिवाए उन व्यक्तियों के जिन्हें अधीक्षक ने अधिकृत किया हो, न मिलने दिया जाएगा और न बातचीत करने दी जाएगी। पैरा 854 उस दशा में अलार्म बजाने की व्यवस्था है जब बंदी आत्महत्या करने का प्रयत्न करे।

पैरा 855 : चाबियों का प्रबंध, वह दशाएं जिनमें द्वार खोला जा सकता है

(1) उस सैल की चाबियां, जिसमें सिद्धदोष कैदी को बंद रखा जाता है, प्रधान वार्डन के पास रहेंगी जो ड्यूटी पर हो तथा वह अलार्म सुनने पर ऐसी सैल की ओर प्रस्थान करेगा और वह अलार्म सुनने पर तथा आपात की दशा में, जैसे बंदी द्वारा आत्महत्या करने का प्रयत्न, सैल की ओर प्रस्थान करेगा और उसमें प्रवेश करेगा तथा संतरियों की सहायता से उसे सुरक्षित करेगा।

(2) अन्य किसी समय उस सैल का द्वार जिसमें सिद्धदोष को बंद किया गया है, तब तक नहीं खोला जाएगा जब तक बंदी को हथकड़िया न लगा दी जाएं अथवा बंदी द्वारा हिंसा की संभावना के संबंध में सुरक्षा सुनिश्चित न कर दी जाए अथवा, यदि बंदी हथकड़िया लगाने से इन्कार करता है तो, जब तक सुरक्षा के लिए स्थापन के कम से कम तीन सदस्य वहां उपस्थित न हों।

(3) सिद्धदोष की सैल में प्रयुक्त ताले ऐसे होंगे जिन्हें कारागार में प्रयुक्त किन्ही चाबियों से खोला न जा सकता हो सिवाय उनके जो उचित रूप से प्रयोग के लिए उनके पास हैं।

सिद्धदोष बंदी की और उस सैल जिसमें वह रह रहा है, दिन में दो बार उक्त अधीक्षक द्वारा तलाशी ली जाएगी। इस पैरा में ऐसी तलाशियों की एक पुस्तिका रखने और उसमें तलाशियों के परिणाम लिखने का भी उपबंध है।

पैरा 858. सिद्धदोष बंदी की दिन में दो बार तलाशी लेना—उप अधीक्षक अथवा उसके निदेश के अधीन सहायक अधीक्षक, प्रत्येक प्रातःकाल और सायंकाल प्रत्येक सिद्धदोष बंदी की, तथा उस सैल की जिसमें वह रहता है, स्वयं तलाशी लेगा और ऐसा करने के बारे में तथा उसके परिणाम के बारे में पुस्तिका में टिप्पणी लिखेगा।

पैरा 859 उप अधीक्षक तथा अन्य अधिकारियों पर इस कर्त्तव्य की बाध्यता प्रदान करता है कि वे ऐसे सिद्धदोष बंदी के भोजन की परीक्षा करें। यह उपबंध है कि सश्रम सिद्धदोष को दिया जाने वाला सामान्य भोजन ही मृत्यु दण्ड के सिद्धदोष व्यक्ति को उपलब्ध कराया जाए।

पैरा 859—भोजन पूर्वावधानियां—(1) मृत्यु दण्डादेश वाले बंदी को सश्रम सिद्धदोष को दिया जाने वाला सामान्य भोजन दिया जाएगा।

(2) मृत्युदण्डित बंदी के उपयोग के लिए भोजन की जांच उप अधीक्षक, सहायक अधीक्षक या चिकित्सा अधिकारी करेगा और वह भोजन की ऐसी वस्तु को रोक लेगा जिसके बारे में उसे संदेह हो तथा अधीक्षक को उन परिस्थितियों की जानकारी देगा। ऐसे बंदी को भोजन उपरोक्त अधिकारियों में से किसी एक अधिकारी की निगरानी में दिया जाएगा।

गर्भवती महिला को मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के बारे में उपबंध, महिलाओं की दशा में अपवाद, बंदी को पुस्तकों आदि के प्रयोग की अनुमति, आदि से संबंधित बातें विस्तार के साथ पैरा 858 से 864 तक में दी गई हैं। फांसी के प्रयोजन के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली रस्सी, उसकी परीक्षा आदि का विस्तृत विवरण पैरा 866 में दिया गया है।

पैरा 866 : रस्सी का विवरण और परीक्षा—(1) मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के लिए एक इंच परिधि की मनीला रस्सी का प्रयोग किया जाएगा। ऐसी कम से कम दो रस्सियां, जो प्रयोग योग्य हों, ऐसे प्रत्येक कारागार में रखी जाएंगी जिन पर मृत्यु दण्ड के निष्पादन का दायित्व है।

टिप्पण :—रस्सी की लम्बाई 19 फीट होनी चाहिए और वह पूरी तरह गुथी हुई तथा पूर्ण रूप से सीधी होनी चाहिए। उसकी मोटाई समान होनी चाहिए और वह फंदे में से शीघ्रता से निकाले जाने योग्य तथा सात फीट की लटकन सहित 280 पौंड का भारत सहने योग्य पर्याप्त रूप से मजबूत होनी चाहिए।

(2) रस्सियों की जांच अधीक्षक की उपस्थिति में उस तारीख से कम से कम एक समाप्त पूर्व की जाएगी जो तारीख दण्ड निष्पादन के लिए नियत की गई है और यदि रस्सियां परीक्षा में ठीक नहीं पाई जातीं तो तुरंत नई रस्सियां प्राप्त की जाएंगी और प्राप्त होने पर उनकी जांच की जाएगी।

(3) जांच की गई रस्सियों को किसी सुरक्षित स्थान में ताले में बंद रखा जाएगा।

(4) निष्पादन से ठीक पहले सांयकाल में फांसी और रस्सी की यह सुनिश्चित करने के लिए परीक्षा की जाएगी कि जांच होने के पश्चात् कोई खराबी तो नहीं हुई है।

टिप्पण :—रस्सी की जांच उसके एक सिरे पर फांसी दिए जाने वाले कैदी के भार के डयोड़े भार के बराबर बालू या मिट्टी के बोरे के साथ जोड़कर तथा इस भार को उतनी दूरी के लटकन (drop) के साथ छोड़कर की जाएगी जितनी लटकन बंदी को दी जानी है।

उपरोक्त उपबंध में निष्पादन के लिए प्रयोग की जाने वाली रस्सी की दो बार जांच करने का उपबंध है, अर्थात् प्रथम बार दण्ड निष्पादन की तारीख से एक सप्ताह पूर्व और दूसरी बार दण्ड निष्पादन से पूर्व। इस उपबंध के अनुसार कम से कम दो मनीला रस्सी रखने का उपबंध है जो एक इंच परिधि की और प्रयोग योग्य दशा में होनी चाहिए। ऐसी रस्सी की जांच की पद्धति बंदी के हाथ के डयोड़े के बराबर बालू या मिट्टी के बोरे को ऐसी रस्सी से जोड़कर की जाएगी। लटकन (drop) की लम्बाई उतनी होगी जितनी मृत्युदण्डित बंदी के लिए अपेक्षित है।

फांसी की वास्तविक प्रक्रिया तथा उसकी तैयारियां आदि पैरा 857-873 के अनुरूप होगी जो संक्षेप में निम्नलिखित रूप में हैं :—

1. फांसी के समय उपस्थित रहने के अधिकारी व्यक्ति कारागार का अधीक्षक, चिकित्सा अधिकारी और जिला मजिस्ट्रेट तथा उसके द्वारा नियुक्त प्रथम श्रेणी का अधिकारी हैं।

2. फांसी लोक निष्पादक द्वारा दी जाएगी। यदि लोक निष्पादक उपलब्ध नहीं हो तब किसी विश्वास योग्य व्यक्ति को, जिसे स्थानीय रूप से प्रशिक्षित किया गया हो, यह कार्य सौंपा जाएगा। यह कर्त्तव्य अधीक्षक को सौंपा गया है कि वह अपना यह समाधान करे कि जिस व्यक्ति को निष्पादन का कार्य सौंपा जाता है वह यह कार्य करने के लिए सक्षम है।

3. लटकन (drop) का विनियमन: फांसी द्वारा मृत्युदण्ड सुनिश्चित करने के लिए ये सबसे महत्वपूर्ण है कि लटकन की लम्बाई नियत करने में साधारण सी भूल भी दण्ड प्राप्त व्यक्ति की मृत्यु लम्बी हो जाने का कारण बन सकती है। लटकन को बंदी की ऊंचाई, भार और शारीरिक दशा के अनुसार विनियमित किया जाता है। अधीक्षक इस विषय में चिकित्सा अधिकारी की सलाह भी ले सकता है। पैरा 871 में अधीक्षक के लिए सामान्य मार्ग निर्देश का तुलनात्मक चार्ट निम्नलिखित प्रकार से दिया गया है :—

पैरा 871. "लटकन (drop)" का विनियमन—लटकन का निम्नलिखित माप, जो बंदी के भार के अनुपात में है, साधारण मार्ग निर्देश के लिए दिया जा रहा है। अधीक्षक को अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए और चिकित्सा अधिकारी की सलाह तथा बंदी की शारीरिक दशा के अनुसार लटकन विनियमन करना चाहिए :—

100 पौंड के भार से कम के बंदी के लिए 7

120 पौंड के भार से कम के बंदी के लिए 6

140 पौंड के भार से कम के बंदी के लिए 5-1/2

160 पौंड के भार से कम के बंदी के लिए 5

टिप्पण :—अंतिम आंकड़े अर्थात् 7, 6 51/2, 5 लटकन की ऊंचाई फीटों में दर्शाते हैं।

टिप्पण :—'लटकन' (drop) रस्सी की वह लम्बाई है जो रस्सी पर उस बिन्दु से, जो अपराधी को फांसी के तख्ते पर खड़ा करने की स्थिति में उसके निचले जबड़े के ठीक सामने पड़ता है, उस बिन्दु तक है जहां रस्सी फांसी के फंदे में, इस बात को ध्यान में रखते हुए जोड़ी जाती है कि लटकाए जाने पर गर्दन कितनी खिचेंगी।

फांसी का समय :—फांसी दिन प्रारम्भ होने के समय दी जाएगी। तथापि, यह समय पैरा 872 में दिए गए चार्ट के अनुसार बदल जाएगा।

पैरा 872. फांसी का समय—और उसकी प्रक्रिया—(1) फांसी निम्नलिखित समय पर लगाई जाए :—

नवम्बर से फरवरी	प्रात: 8 बजे
मार्च, अप्रैल, सितम्बर, अक्टूबर	प्रात: 7 बजे
मई से अगस्त	प्रात: 6 बजे

4. अधीक्षक, उप-अधीक्षक मृत्युदण्ड प्राप्त बंदी की सैल पर पहुंचेंगे और ऐसे बंदी की पहचान सुनिश्चित करेंगे। मृत्यु का वारंट उसे पढ़कर सुनाया जाएगा और अधीक्षक की उपस्थिति में बंदी विभिन्न दस्तावेजों पर, जैसे, वसीयतनामा आदि पर, अपेक्षित हस्ताक्षर करेगा। तब अधीक्षक फांसी के तख्ते की ओर अग्रसर होगा। उप-अधीक्षक की उपस्थिति में सिद्ध दोष के हाथ उसकी पीठ के पीछे बांध दिए जाएंगे और उसके पैरों की बेड़ियां (यदि कोई हैं) निकाल दी जाएगी।

5. फांसी की ओर प्रस्थान :—बंदी को उप अधीक्षक की निगरानी में फांसी के तख्ते की ओर ले जाया जाएगा। उसकी निगरानी प्रधान वार्डन व छह वार्डन करेंगे जिनमें से दो आगे व दो पीछे रहेंगे। एक बंदी का हाथ पकड़े रहेंगे।

6. फांसी के तख्ते पर पहुंचने के पश्चात् (उप-अधीक्षक, जिला मजिस्ट्रेट और चिकित्सा अधिकारी पहले से खड़े होंगे) वारंट को देशी भाषा में पढ़कर सिद्ध दोष को सुनाया जाएगा और उसे निष्पादक (जल्लाद) को सौंप दिया जाएगा।

7. सिद्ध दोष का हाथ पकड़ने वाला वार्डन भी फांसी के तख्ते पर उसके साथ खड़ा होगा तथा बंदी को उस बीम के ठीक नीचे खड़ा कर देगा जिसमें रस्सी लटकी है।

8. निष्पादक तत्पश्चात् उसके पैरों को जोड़कर कसकर बांध देगा, उसके सिर पर कैप पहना देगा और रस्सी को उसकी गर्दन के चारों ओर कस देगा। फंदा बीच की रेखा से दाहिनी ओर या ढेड इंच की दूरी पर रहना चाहिए और कैप से अलग रहना चाहिए।

9. मृत्युदण्ड प्राप्त व्यक्ति की बांह पकड़ने वाले वार्डन इस समय हट जाएंगे और निष्पादक (जल्लाद) फंदा खींच देगा।

10. मृत्युदण्ड प्राप्त बंदी के शरीर को आधे घंटे तक लटकने दिया जाएगा और तब तक नीचे नहीं उतारा जाएगा जब तक चिकित्सा अधिकारी यह घोषित नहीं कर देता कि बंदी मर गया है। अधीक्षक से अपेक्षा की जाती है कि वह वारंट को इस पृष्ठांकन के साथ वापिस कर दे कि मृत्युदण्ड पूरा कर दिया गया है।

सेना अधिनियम, वायु सेना अधिनियम और नौसेना अधिनियम के अनुसार मृत्युदण्ड का निष्पादन

सेना अधिनियम और वायु सेना अधिनियम में भी मृत्युदण्ड के निष्पादन के लिए उपबंध हैं। यद्यपि मृत्युदण्ड के निष्पादन की प्रकिया को विस्तार से स्पष्ट नहीं किया गया है किन्तु सुसंगत, उपबंध जिनका उल्लेख इस रिपोर्ट में किया गया है, इन अधिनियम के अधीन दण्ड की पुष्टि और पुनरीक्षण के आवेदन से संबंधित उपबंधों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है और उन उपबंधों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है :—

वायु सेना अधिनियम, 1950

वायु सेना अधिनियम, 1950 में मृत्यु दण्ड देने और उसके निष्पादन के लिए उपबंध किया गया है जो उक्त अधिनियम में उल्लिखित अपराधों के लिए दिया जा सकता है।

वायु सेना अधिनियम, 1950 के अंतर्गत मृत्युदण्ड इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार दिए जाने वाले मृत्यु दण्ड के निष्पादन के अध्ययन के प्रयोजन के लिए सुसंगत है। अधिनियम की धारा 34 में उन विभिन्न अपराधों का उल्लेख है जिसके लिए मृत्यु दण्ड दिया जा सकता है। यह उपबंध निम्नलिखित रूप में है :—

"....................को सेना न्यायालय द्वारा दोष सिद्ध होने पर, मृत्युदण्ड या ऐसा कोई कम दण्ड दिया जाएगा जैसा अधिनियम में उल्लिखित है"।

यह धारा सेना न्यायलय को वायु सेना अधिनियम, 1950 की धारा (क) से (ण) तक में उल्लिखित अपराधों के लिए मृत्यु का दण्डादेश देने के लिए सशक्त करती है। तथापि, यह दण्ड अध्याय XII में वर्णित उपबंधों के अध्यधीन है। इस अध्याय में पुष्टि और पुनरीक्षण आवेदन की प्रकिया दी गई है। अध्याय XIII में दण्डों में निष्पादन के लिए उपबंध है।

धारा 163, मृत्युदण्ड के स्वरूप का उपबंध निम्नलिखित रूप में करती है :—

"मृत्युदण्ड देने की दशा में, स्वविवेकानुसार, यह निदेश दिया जा सकता है कि अपराधी को तब तक गरदन से लटका कर फांसी दी जाए जब तक उसकी मृत्यु न हो जाए अथवा शूट करके मृत्यु दण्ड दिया जाए"।

इस धारा में सेना न्यायलय को इस संबंध में अपने विवेक का प्रयोग करने का अधिकार दिया गया है कि दण्ड फांसी द्वारा या शूट करके दिया जाए। इस धारा में उस प्रकिया और पद्धति का उपबंध है जिसके अनुसार मृत्यु दण्ड दिया जाए। यह महत्वपूर्ण है कि वायु सेना अधिनियम, 1950 में शूट करके मृत्यु दण्ड के निष्पादन के लिए उपबंध किया गया है। दण्ड प्रकिया संहिता में यह पद्धति विहित नहीं की गई है किन्तु वायु सेना अधिनियम, 1950 में मृत्यु दण्ड के निष्पादन के लिए उपबंध किया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि भारत में मृत्यु दण्ड के निष्पादन के लिए एक दूसरी पद्धति अर्थात् शूट करके मृत करना, अनुमत है। इसका उद्देश्य अधिनियम में उल्लिखित अपराधों के सिद्ध दोष अपराधी की दशा में दण्ड निष्पादन की एक सरल पद्धति के लिए उपबंध करना है।[4]

यह उल्लेखनीय है कि जब तक अधिनियम के अंतर्गत संबंधित प्राधिकारियों द्वारा दण्ड की पुष्टि नहीं की दी जाती[5] सिद्ध दोष को मृत्युदण्ड नहीं दिया जाएगा। अधिनियम में केन्द्रीय सरकार या उसके द्वारा इस निमित शक्ति किसी अधिकारी द्वारा निष्कर्षों और आदेशों की पुष्टि के लिए उपबंध किया गया है।[6] यह उपबंध सेना न्यायालय के सभी विनिश्चयों की बाबत केन्द्रीय सरकार द्वारा कानूनी पुनरीक्षण के लिए है। ये उपबंध सेना न्यायालय की प्रक्रिया या निष्कर्षों से संबंधित अनियमितताओं का विश्लेषण करने के लिए केन्द्रीय सरकार को समर्थ बनाते हैं।

सेना अधिनियम, 1950 और नौसेना अधिनियम, 1957 में भी वायु सेना अधिनियम, 1950 के समतुल्य उपबंध है। वायु सेना अधिनियम, 1950 तथा नौसेना अधिनियम, 1957 के उपबंधों की प्रकृति वही है जो वायु सेना अधिनियम, 1950 के उपबंधों की है और जिनमें मृत्युदण्ड के निष्पादन के लिए शूट करके मारने का विकल्प है।[7]

इन अधिनियमों के सुसंगत उपबंधों के प्रतिनिर्देश से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अधिनियम, के अंतर्गत मृत्युदण्ड के निष्पादन के लिए दी गई पद्धतियों में से शूट करने की पद्धति का उद्देश्य इन बलों के पास उपलब्ध अधिकारों या उपस्करों से दण्ड के निष्पादन को सहज और आसान बनाना है। सिद्धदोष व्यक्ति को शूट करने की रीति निश्चय ही फांसी द्वारा दण्ड की तुलना में कम कष्टप्रद है क्योंकि फांसी की प्रकिया बृहत्त है और उसमें लटकन (drop) की लम्बाई को अवधारित करने के लिए भार का माप ऊँचाई का माप आदि के बारे में विनिर्दिष्ट बंदिशें हैं और इसी प्रकार से किस प्रकार के वस्त्र पहनाए जाएंगे, आदि के बारे में बंदिशें हैं।

यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् न्यूरमवर्ग विचारणों के पश्चात् जर्मन हाई कमाण्ड के सदस्यों ने, जिन्हें मृत्युदण्ड दिया गया था, फांसी की अपेक्षा शूटिंग द्वारा मृत्यु की पद्धति से मृत्युदण्ड के निष्पादन को चुना था। वे शूटिंग के द्वारा फौजी मौत चाहते थे। वे फांसी लगाकर छत पर अपमानजनक मृत्यु की अपेक्षा शूटिंग द्वारा फौजी मौत चाहते थे। यह इस उद्देश्यपूर्ण तथ्य का पर्याप्त साक्ष्य है कि शूट करके मृत्युदण्ड गर्दन से लटका कर फांसी देने की अपेक्षा आसान और कम कष्टप्रद है। यह स्पष्ट है कि विभिन्न विकासशील और विकसित देशों में इस पद्धति का प्रयोग स्पष्टतया इसी कारण से है क्योंकि यह पद्धति सादा, निष्पादन में आसान और कम कष्टप्रद है।

---

[4] वायु सेना अधिनियम, 1950 की धारा 34 (क) से (ण)

[5] वायु सेना अधिनियम, 1950 का अध्याय XII

[6] वायु सेना अधिनियम, 1950 की धारा 153

[7] सेना अधिनियम, 1950 में मृत्यु दण्ड देने का उल्लेख अध्याय 6 की धारा 34 (क) से (ठ) तक में है और शुत्र से संबंधित अपराधों तथा मृत्यु के दण्ड से धारा 37 राजद्रोह के संबंध में है और उसमें अभियुक्त का दोषसिद्ध होने पर मृत्युदण्ड का उपबंध है। अध्याय 7 सेना न्यायालय द्वारा दिए जाने वाले दण्ड के संबंध से है। अध्याय 12 पुष्टि और पुनरीक्षण के बारे में है। अध्याय 13 में दण्डों के निष्पादन के विषय में है, धारा 166 मृत्यु दण्ड के स्वरूप के बारे में है। नौसेना अधिनियम, 1957 की धारा 147 में भी मृत्यु दण्ड स्वरूप से संबंधित उपबंध है।

अध्याय 5

मृत्यु दण्ड के निष्पादन का ढंग

आयोग इस पृष्ठभूमि में मृत्युदण्ड के निष्पादन के विभिन्न ढंगों का तुलनात्मक विश्लेषण करना चाहता है और यह सुझाव देना चाहता है कि इनमें से कौन सा सर्वाधिक मानवीय, कम कष्टप्रद और निष्पादन के लिए सरल ढंग है जिसमें शरीर का विरूपण नहीं होता हो। इस अध्याय का उद्देश्य फांसी, नसों में इन्जेक्शन और शूट करने के ढंगों का तुलनात्मक विश्लेषण है। यह विश्लेषण कुछ बुनियादी तथा सर्वाधिक स्वीकार्य मानकों पर आधारित है। ये विश्लेषण हमने भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत मामलों, आयोगों के निष्कर्षों तथा यूनाइटेड नेशन्स इकोनोमिक एण्ड सोशल काउंसिल (ई सी ओ एस ओ सी) द्वारा अपनाए गए संकल्पों के आधार पर किया है। (ये संकल्प मृत्युदण्ड झेलने वालों के अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी देने वाले मानकों और रक्षोपायों के बारे में है, अर्थात्, इकोनोमिक एण्ड सोशल काउंसिल रिजोल्यूशन, 1984/50, तथा जनरल असेम्बली रिजोल्यूशन 29/118, 1984 संलग्न है।)

दीना बनाम **भारत का संघ राज्य** (1983) 4 एस सी सी 645 में अधिकथित कसौटी में कहा गया है कि मृत्युदण्ड के निष्पादन में तीन कसौटियों का समाधान होना चाहिए, अर्थात् :—

1. निष्पादन त्वरित और यथासंभव सादा होना चाहिए दण्ड निष्पादन का काम यथासंभव इतना त्वरित और सादा तथा किलिष्टताओं से मुक्त होना चाहिए जितना बंदी के भय को अनावश्यक रूप से बढ़ाने वाला न हो।

2. निष्पादन के कार्य में व्यक्ति को तुरन्त चेतनाहीन हो जाना चाहिए जिससे कि वह शीघ्र मृत्यु को प्राप्त हो जाए।

3. निष्पादन शालीन होना चाहिए।

4. उसके कारण शारीरिक विरूपण नहीं होना चाहिए।

ई सी ओ एस ओ सी ने एक महत्वपूर्ण मानक तथा रक्षोपाय का वर्णन मृत्युदण्ड के विषय में किया है जिसका उल्लेख रक्षोपाय संख्या 9 में निम्नलिखित रूप में है :—

"जहां मृत्युदण्ड दिया जाना हो वहां उसका निष्पादन इस प्रकार से होना चाहिए कि उसे यथासंभव न्यूनतम कष्ट हो।"

रस्सी से लटका कर फांसी द्वारा मृत्युदण्ड के निष्पादन के औचित्य को हमें कतिपय उद्देश्यपूर्ण तथ्यों के संदर्भ में देखना होगा, जैसे—अंतरराष्ट्रीय मानक या मानदण्ड या अंतरराष्ट्रीय विचारधारा, आधुनिक दण्ड संबंधी सिद्धांत तथा मानवीय शिष्टता के मानक। मृत्युदण्ड के संदर्भ में मानवीय शालीनता के मानक के औचित्य की जांच उन विभिन्न पहलुओं के संदर्भ में अपेक्षित है जो प्रत्येक समाज में भिन्न-भिन्न हैं और उस समाज की सांस्कृतिक तथा धार्मिक परम्परा, उस समाज के इतिहास तथा दर्शन तथा उसकी चारित्रिक विचारधारा और शिष्टिक मूल्यों पर आधारित है। उदाहरण के लिए, यदि चोरी के अपराध के लिए भुजा काट देने का दण्ड या दुचार के अपराध के लिए पत्थर मारकर मृत्यु देने का दण्ड विधि द्वारा विहित थे, जैसा कि दक्षिण अफ्रीका में प्रचलित है, तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऐसे दण्ड की हमारे देश में बर्बर और दुष्टतापूर्ण दण्ड के रूप में निंदा की जाएगी भले ही ये दण्ड अपराध के अनुरूप समझे जाएं और इस कारण से किन्हीं अन्य देशों में युक्तियुक्त और न्यायोचित समझे जाएं। इसी प्रकार से मानवीय शिष्टता के मानक एक ही समाज में समय-समय पर भिन्न-भिन्न होते हैं। एक प्रगतिशील समाज में मानवीय शिष्टता के मानक भी उच्चतर स्तरों की ओर अग्रसर रहते हैं और जिन्हें किसी समय अपराध के

अनुरूप तथा न्यायोचित और युक्तियुक्त दण्ड समझा जाता था उन्हें अब मानवीय शिष्टता के विकसित मानकों के अनुसार बर्बर तथा अमानवीय और अपराध के पूर्णतः अननरूप माना जा सकता है।

यह उल्लेखनीय है कि किसी कुत्ते को भी मारना हो तो उसके लिए आज शूट करके मारना सही तरीका नहीं है अपितु उसे नस में इंजेक्शन देकर मारा जाता है। अतः यह प्रश्न उठता है कि किसी मनुष्य को कष्टपूर्ण ढंग से उसका जीवन समाप्त करके मृत्युदण्ड क्यों दिया जाए?

उपरोक्त रक्षोपायों और मतों की पृष्ठभूमि में यहां उस मत पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है जो न्या. भगवती ने **बचन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** (1982) 3 एस सी सी (25) में (असहमति के निर्णय में) व्यक्त किया था। उक्त मत निम्नलिखित रूप में है :—

"29. मृत्युदण्ड के निष्पादन में जो शरीरिक कष्ट और प्रतारणा होती है वह भी कम दुष्टतापूर्ण और मानवीय नहीं है। भारत में मृत्युदण्ड निष्पादन की पद्धति रस्सी से लटका कर फांसी लगाना है। यहां अभी तक करेन्ट लगा कर या प्राणातंक गैस का प्रयोग करने की पद्धति नहीं अपनाई गई है जैसी कि कतिपय पश्चिमी देशों में है। अतः फांसी द्वारा मृत्युदण्ड के संदर्भ में मुझे यह विचार करना होगा कि क्या मृत्युदण्ड इस कारण से बर्बर और अमानवीय है क्योंकि उसमें शारीरिक कष्ट और दुःख होता है यह निःसंदेह सत्य है कि रॉयल कमीशन आन केपीटल पनिशमेन्ट 1949–53 इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि फांसी लगाना मृत्युदण्ड की सर्वाधिक मानवीय पद्धति है और इसी प्रकार से इचीकावा बनाम जापान (देखिए, ज्यूडिशियल रिव्यू ऑफ डेथ पेनल्टी के विषय पर डेविड पेनिक, पृष्ठ 73) में भी जापान के उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया था कि फांसी के द्वारा मृत्युदण्ड 'दुष्टतापूर्ण दण्ड' जैसा नहीं है जिसकी मनाही जापान के संविधान के अनुच्छेद 36 में की गई है किन्तु मृत्युदण्ड की पद्धतियों में से फांसी सर्वाधिक मानवीय है अथवा नहीं या जापान के उच्चतम न्यायालय के मतानुसार फांसी अनुच्छेद 36 के अर्थ में दुष्टतापूर्ण दण्ड है या नहीं है, एक बात तो स्पष्ट है कि फांसी में निःसंदेह तीव्र शारीरिक पीड़ा और कष्ट होता है। संयुक्त राज्य अमरीका के सबसे अधिक सुरक्षित कारागार सान क्वेन्टिन के वार्डन डफी ने फांसी की प्रक्रिया को उसके भयावह ब्यौरे देते हुए अत्यन्त स्पष्टता के साथ निम्नलिखित शब्दों में वर्णित किया है :—

मृत्युदण्ड से एक दिन पहले बंदी को लटकन की लम्बाई के लिए वजन कराने और माप देने के भयावह अनुभव से गुजरना होता है क्योंकि यह सुनिश्चित करना आवश्यक होता है कि उसकी गर्दन टूट जाए और इस दृष्टि से उसकी गर्दन का माप और शरीर के माप आदि क्या हैं। तख्ता खींचने पर वह रस्सी के छोर पर लटक जाता है। ऐसे अवसर भी आते हैं जब उसकी गर्दन नहीं टूटती और बंदी को मृत्यु दम घुटने से हो जाती है। उसकी आंखें उसके चेहरे से प्रायः बाहर निकल पड़ती हैं, उसकी जीभ सूज जाती है और उसके मुख से बाहर निकल आती है, उसकी गर्दन टूट सकती है, और रस्सी में उसके चेहरे के एक ओर की खाल और मांस का बहुत बड़ा भाग, जिस तरफ फंदा होता है लग जाता है। बंदी का पेशाब निकल जाता है, पाखाना निकल जाता है और गंदगी फर्श पर आ गिरती है और साक्षी देखते रहते हैं और लगभग सभी मृत्युदण्डों में एक या अधिक साक्षी बेहोश भी हो जाते हैं और उन्हें साक्षी कक्ष से बाहर ले जाना पड़ता है। बंदी रस्से के सिरे पर 8 से 14 मिनट तक तब तक लटकता रहता है जब कि कि डाक्टर, जिसे एक छोटी सीढ़ी पर चढ़ना होता है और अपने स्टेथेस्कोप से हृदयगति सुननी होती है, बंदी को मृत घोषित नहीं कर देता। कारागार का एक संतरी फांसी पर चढाए गए व्यक्ति के पैरों की ओर खड़ा रहता है और शरीर को स्थित रखने के लिए पकड़े रहता है क्योंकि पहले कुछ मिनटों के दौरान सांस लेने के प्रयास में प्रायः काफी संघर्ष होता है।

यदि लटकन (drop) छोटी है तो दम घुटने के कारण मृत्यु धीरे-धीरे और कष्टपूर्ण होती है। दूसरी ओर, यदि लटकन लम्बी है तो सिर धड़ से अलग हो जाता है। इंग्लैण्ड में सैंकड़ो वर्ष के अभ्यास के पश्चात् एक ब्यौरेवार चार्ट तैयार किया गया है जिसका संबंध व्यक्ति के भार और शारीरिक दशा तथा लटकन की उचित लम्बाई से है किन्तु फिर भी गलतियां हुई हैं। सन् 1927 में एक शल्य चिकित्सक ने जिसने दो मृत्युदण्ड देखे थे, लिखा है :

''15 मिनट के पश्चात् शरीर को रस्सी काटकर अलग किया गया और उस समय शव समझे जाने वालों में से एक की सांस की आवाज सुनकर मैं भयभीत हो गया और मैंने देखा कि वह सांस लेने का प्रयत्न कर रहा था जो स्पष्ट रूप से पुनर्जीवन की भूमिका थी। दोनों शरीरों को शीघ्र पंद्रह मिनट से अधिक समय के लिए पुनः लटकाया गया .... । उद्देश्य यह होता है कि गर्दन अलग हो जाए किन्तु सभी मृत्युओं के पश्चात् की गई परीक्षाओं से मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि अधिकांश मामलों में मृत्यु का कारण दम या सांस का घुटना था न कि गर्दन का टूटना।''

उपरोक्त विवरण से यह बात निःसंदेह स्पष्टरूप से स्थापित हो जाती है कि फांसी द्वारा मृत्युदण्ड के निष्पादन में अत्यधिक शारीरिक कष्ट और पीड़ा होती है भले ही इसे कुछ लोग करेन्ट द्वारा या प्राणांतक गैस के प्रयोग द्वारा मृत्यु से अधिक मानवीय मानते हों।''

न्या. भगवती के उपरोक्त मंतव्य से यह स्पष्ट है कि अधिकांश विकसित तथा विकासशील देशों ने फांसी द्वारा मृत्युदण्ड के ढंग के स्थान पर नसों के प्राणातंक इन्जेक्शन या शूट करने के ढंग को अपना लिया है। मृत्युदण्ड की इन पद्धतियों का विवरण यह सिद्ध करता है कि फांसी द्वारा मृत्युदण्ड में अत्यधिक कष्ट व पीड़ा होती है। मृत्युदण्ड के विभिन्न अन्य ढंगों के संबंध में इन विचारों और मंतव्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राणातंक इन्जेक्शन मृत्यु के दण्डिक निष्पादन की सर्वाधिक मानवीय पद्धति के रूप में स्वीकार्य योग्य है। इस ढंग से मृत्युदण्ड प्राप्त करने वाले सिद्ध दोष व्यक्ति को कम कष्ट व पीड़ा होती है। फांसी के परिणामस्वरूप मृत्यु के अधिकांश मामलों में मृत्यु का कारण दम या सांस का घुटना होता है और उसी के सिद्ध दोष व्यक्ति की मृत्यु लम्बी और कष्टपूर्ण हो जाती है। हम यहां न्यायाधिपति भगवती के उपरोक्त निर्णय का कुछ और अंश उद्धृत करना चाहते हैं :—

''30. यदि सिद्ध दोष बंदी पर मृत्युदण्ड का मानसिक और शारीरिक प्रभाव सच में यही है और इसके कारण मानसिक क्षोभ, मनोवैज्ञानिक तनाव और शारीरिक पीड़ा होती है तो यह समझना कठिन है कि इसे दुष्टतापूर्ण और अमानवीय क्यों नहीं समझा जा सकता। इस मानसिक और शारीरिक कष्ट और पीड़ा पहुंचाने का औचित्य यदि कोई हो सकता है तो उसका केवल एक ही उत्तर है कि जिस सिद्धदोष बंदी ने किसी मानव की हत्या की है उसके प्रति कोई सद्भाव नहीं होना चाहिए तथा उसे यही सजा मिलनी चाहिए क्योंकि वह इसी के 'योग्य' है। उस व्यक्ति के प्रति कोई दया नहीं दिखाई जा सकती जिसने दूसरों के प्रति कोई दया नहीं दिखाई है, अर्थात् जैसाकि मैं आगे उल्लेख करूंगा, मृत्यु के इस औचित्य की सिफारिश कोई सभ्य समाज नहीं कर सकता क्योंकि यह बदले के सिद्धांत पर आधारित है और इसका आधार अपराध करने वाले के प्रति समाज की बदला लेने की इच्छा है। यह दण्ड के सिद्धांत का अनुमत लक्ष्य नहीं है।''

यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि भारत के विधि आयोग को यह ज्ञात है कि उपरोक्त मामले में विद्वान न्यायाधिपति द्वारा व्यक्त किए गए मत किसी विशेष प्रतिकूल मत का परिणाम नहीं है जैसा कि निर्णय के पैरा 38 में किए गए उल्लेख से स्पष्ट है :

''मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि जिस प्रश्न पर विचार कर रहा हूं वह खून के अपराध के लिए मृत्यु दण्डादेश की अनुरूपता की बाबत है और मैं जो कुछ कह रहा हूं उसे इस प्रश्न पर मेरी राय की अभिव्यक्ति समझा जाना चाहिए कि क्या मृत्युदण्ड राज्य की सुरक्षा से संबंधित राजद्रोह के अपराध या किसी अन्य अपराध के अनुपात में या अनुरूप कहा जा सकता है।''

यहां उच्चतम न्यायालय द्वारा **दीना** बनाम **भारत का संघ राज्य** के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा [1983 (4) एस सी सी 645] व्यक्त किए गए उस मत का उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है जो दो दशाब्दियों से अधिक से प्राणांतक इन्जेक्शन के प्रयोग के बारे में प्रचलित प्रक्रिया पर आधारित है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा है :—

''76. अब केवल प्राणांतक इन्जेक्शन की पद्धति पर विचार करना शेष है। रायल कमीशन ने अपनी रिर्पाट के पैरा 735 से 749 में इस पद्धति की चर्चा की है। प्राणांतक इन्जेक्शन मोटी तौर पर एक अप्रयुक्त पद्धति है। किन्तु यह इसका सर्वाधिक गंभीर दोष नहीं है। इन्जेक्शन नसों में दिया जाता है जो कि एक शिष्ट और कौशलपूर्ण प्रक्रिया है। रायल कमीशन ने जिन कारागार चिकित्सा अधिकारियों का साक्षात्कार किया था उन्हें संदेह था कि प्राणांतक इन्जेक्शन की पद्धति फांसी की तुलना में अधिक मानवीय/दयापूर्ण प्रक्रिया है या नहीं (रिपोर्ट का पैरा 739 देखिए)। ब्रिटिश मेडीकल एसोसिएशन ने आयोग को बताया था कि सिद्धदोष खूनी की मृत्यु के लिए किसी भी चिकित्सक की सहायता नहीं ली जानी चाहिए और एसोसिएशन मृत्युदण्ड की पद्धति के ऐसे किसी भी प्रस्ताव का घोर विरोध करेगा जिसमें किसी चिकित्सक की सेवाओं की अपेक्षा वास्तविक मृत्यु की प्रक्रिया के निर्वहन के लिए अथवा उस प्रक्रिया की तकनीक को अन्य लोगों को सिखाने के लिए की जाएगी। कमीशन ने पैरा 749 में यह कहकर अपने निष्कर्ष व्यक्त किए कि वह वर्तमान परिस्थितियों में यह सिफारिश नहीं करेगी कि फांसी के स्थान पर प्राणांतक इन्जेक्शन का प्रयोग किया जाए क्योंकि आयोग का इस बारे में समाधान नहीं हुआ था कि प्राणांतक इन्जेक्शन देने से मृत्यु सभी मामलों में त्वरित, कष्ट रहित और शालीन होगी। तथापि, आयोग ने, समग्र रूप से और प्रभावशील ढंग से सिफारिश की कि इस प्रश्न पर समय-समय पर विशेष रूप से निश्चेतना विज्ञान में हुई प्रगति के संदर्भ में, परीक्षा की जानी चाहिए।[8]''

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है भारत के विधि आयोग ने भी 1967 की 35वीं रिपोर्ट में यही राय व्यक्त की थी।

इन मंतव्यों की पृष्ठभूमि में यह बात महत्वपूर्ण है कि प्राणांतक इन्जेक्शन देने की प्रक्रिया को चिकित्सा की प्रक्रिया नहीं माना जाता और संयुक्त राष्ट्र अमरीका के अधिकांश राज्यों ने इस प्रश्न का उत्तर चिकित्सा शिष्टाचार की परिधि से बाहर हटकर तलाश कर लिया है। इस समस्या के समाधान में से एक समाधान यह है कि चिकित्सा का ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों को और इस प्रयोजन के लिए इस क्षेत्र की विशेषज्ञता संबंधित व्यक्तियों को प्रशिक्षण दिया जाए और सुनिश्चित किया जाए कि ऐसे व्यक्तियों को उपयुक्त प्राधिकारी द्वारा इस निमित्त पदाभिहित किया जाता है। (संयुक्त राज्य अमरीका के विभिन्न राज्यों जैसे न्यू जर्सी, मोन्टाना, इडाहो आदि में इसी प्रकार की प्रणाली है)।

न्यू जर्सी

तथापि, न्यू जर्सी के कानून में डाक्टरों को प्राणांतक दवा देने से अपवर्जित किया गया है। कानून में उपबंधित है कि करेक्शन डिपार्टमेन्ट का ''आयुक्त'' इन्जेक्शन देने के लिए अर्हित तथा चिकित्सा प्रक्रिया से परिचित व्यक्तियों को, मृत्युदण्ड के निष्पादन में सहायता देने के लिए, पदाभिहित करेगा .... किन्तु प्रक्रिया और उपस्कर यह सुनिश्चित करने के लिए डिजाइन किए जाएंगे कि उस व्यक्ति को भी इसकी जानकारी/पहचान न हो जो प्राणांतक औषधि वास्तव में दे रहा है .... । न्यू जर्सी स्टेट्यूट संलग्न # 2C, 49-2.

मोन्टाना

मोन्टाना में कानून के अनुसार डाक्टरों द्वारा मृत्युदण्ड निष्पादित करने का प्रतिषेध नहीं है। ''प्राणांतक इन्जेक्शन द्वारा निष्पादित मृत्युदण्ड देने का कार्य वार्डन द्वारा चुने गए ऐसे व्यक्ति द्वारा, जो इन्जेक्शन देने में प्रशिक्षित हो, किया जाएगा। यह आवश्यक नहीं कि इन्जेक्शन देने वाला व्यक्ति चिकित्सक, रजिस्ट्रीकृत नर्स या अनुपयुक्त नर्स या इस राज्य की अथवा किसी अन्य राज्य की विधि के अंतर्गत रजिस्ट्रीकृत व्यक्ति हो .... ।''

इडाहो

इडाहो के राज्य में यह विहित है कि अपेक्षित प्राणांतक औषधि या औषधियों के प्रयोग द्वारा मृत्युदण्ड देने की बाबत इस धारा द्वारा अपेक्षित रीति चिकित्सा व्यवसाय की रीति नहीं मानी जाएगी।

[8] मृत्युदण्ड के विषय पर विधि आयोग की 1957 की 35वीं रिपोर्ट में इस प्रश्न पर इस रिपोर्ट की भूमिका में विचार किया जा चुका है।

17 LJ&CA/06—8

यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि दीना के मामले में (उपरोक्त) उच्चतम न्यायालय ने दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 354 (5) में 'गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाना जब तक मृत्यु नहीं हो जाए,' मृत्युदण्ड का निष्पादन संवैधानिक रूप से वैध माना है और इसे विद्युत कुर्सी, शूट करने अथवा प्राणांतक इन्जेक्शन देने की तुलना में भारत में उपलब्ध पद्धतियों में से सर्वश्रेष्ठ माना है। पंजाब तथा हरियाणा कारागार मेन्युअल को उद्धृत करते हुए, जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, फांसी की प्रक्रिया एक दिन पूर्व उसी समय आरम्भ हो जाती है जब सिद्धदोष व्यक्ति का वजन लिया जाता है। इसके अतिरिक्त, फांसी से पहले उसके हाथ पैर बांध दिए जाते हैं, उसके सिर पर काला मास्क लगा दिया जाता है। इससे सजा और बढ़ जाती है। यद्यपि निर्णय में उल्लेख है कि कोई और अधिक कष्ट नहीं दिया जाना चाहिए। यह बात ध्यान देने योग्य है कि हाथ पैरों का बांधा जाना और मास्क लगाया जाना सिद्धदोष व्यक्ति के फायदे के लिए नहीं है अपितु उन लोगों के फायदे के लिए है जो फांसी लगा कर मृत्यु दण्ड का निष्पादन करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं क्योंकि वे सिद्धदोष व्यक्ति की अंतिम क्षणों को बर्दाशत नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त फांसी लगाने पर अनेक बार जीभ और आंखें बाहर निकल जाती हैं और इसी कारण सिद्धदोष व्यक्ति के चेहरे पर काला मास्क लगा दिया जाता है। व्यक्ति को लटकाए रखने के दौरान और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी जांच के बारे में कोई उपबंध नहीं है अतः यह ज्ञात नहीं हो पाता है कि मृत्यु कष्टप्रद रूप से दम घुटने से हुई थी या गर्दन टूटने से तुरंत हो गई थी।

यह उल्लेख भी किया जा सकता है कि उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि शूट करके मृत्यु की पद्धति तानाशाही देशों में ही प्रचलित थी किन्तु यह बात पूरी तरह सही नहीं है। वास्तव में भारत में सेना, नौसेना और वायुसेना अधिनियमों में भी सेना न्यायालय को यह विवेकाधिकार है कि वह, जैसा पहले उल्लेख किया जा चुका है, सिद्धदोष व्यक्ति को फांसी द्वारा या शूट करके मृत्युदंड दें। इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि फांसी लगाने की पद्धति को संयुक्त राष्ट्र अमरीका के अनेक राज्यों ने त्याग दिया है और उसके स्थान पर बिजली करेंट या प्राणांतक इन्जेक्शन का प्रयोग होने लगा है। चौतीस राज्यों में मृत्युदंड प्राणांतक इन्जेक्शन द्वारा दिया जाता है। इन पद्धतियों को इसलिये अपनाया जा रहा है क्योंकि वे अधिक सभ्य हैं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के इन अधिकांश राज्यों में फांसी लगाना समाप्त कर दिया गया है।

उन देशों की संख्या में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है जिन्होंने प्राणांतक इन्जेक्शन द्वारा मृत्युदंड निष्पादन की पद्धति को अपनाया है और आज पैंतीस राज्यों में इस पद्धति का प्रयोग किया जा रहा है।

निम्नलिखित सारणी में मृत्युदंड के निष्पादन ढंगों का तुलनात्मक विश्लेषण दिया गया है :

गर्दन से लटका कर फांसी द्वारा मृत्यु	शूट करना	नसों में प्राणांतक इन्जेक्शन
1. निष्पादन सरल है।	1. निष्पादन सरल है।	1. निष्पादन सरल है।
2. निष्पादन की प्रक्रिया में बंदी को मृत घोषित करने में 40 मिनट से अधिक समय लगता है।	2. निष्पादन की प्रक्रिया में बंदी को मृत घोषित करने में कुछ मिनट से अधिक समय नहीं लगता है।	2. निष्पादन की प्रक्रिया में बंदी को मृत घोषित करने में 5 से 9 मिनट का समय लगता है।
3. कम वैज्ञानिक उपस्करों की आवश्यकता है।	3. कम वैज्ञानिक उपस्करों की आवश्यकता होती है।	3. अधिक वैज्ञानिक उपस्करों की आवश्यकता होती है और वे आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं।
4. बंदी को बेहोशी में लगने वाला समय अनिश्चित है।	4. तुरन्त मृत्यु।	4. निश्चेतना औषधि देने के पश्चात् बेहोशी तुरन्त हो जाती है और निद्रा में ही मृत्यु हो जाती है।
5. मृत्यु में लम्बा समय लगता है।	5. तुरन्त मृत्यु।	5. मृत्यु में लम्बा समय नहीं लगता।
6. अधिकांश समय में अत्यधिक पीड़ा होती है।	6. शायद ही कोई पीड़ा होती है।	6. केवल सुई लगाने मात्र की पीड़ा होती है।
7. अधिकांश देशों ने इसे सभ्य ढंग न होने के कारण छोड़ दिया है।	7. अधिकांश देशों में प्राणांतक इन्जेक्शन या शूट करने के विकल्प का उपबंध है।	7. इसे अब मृत्युदंड के सर्वाधिक सभ्य ढंग के रूप में स्वीकार किया जा रहा है।
8. शारीरिक दुर्दशा होती है।	8. शारीरिक दुर्दशा होती है ।	8. शारीरिक दुर्दशा नहीं होती है।
9. दण्ड निष्पादन का नियंत्रित तरीका नहीं है।	9. यह सदैव नियंत्रित और सिद्धदोष की शारीरिक दशा आदि जैसी बातों पर निर्भर नहीं करता है।	9. यह दंड निष्पादन का सर्वश्रेष्ठ नियंत्रित तरीका है।
10. प्रायः त्वरित नहीं है।	10. यह तुलना में त्वरित और पीड़ा रहित है।	10. यह पीड़ा रहित तथा दंड निष्पादन की त्वरित पद्धति है।

अध्याय 6

उन मामलों में उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील का अधिकार जहां मृत्यु के दण्डादेश की उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि कर दी जाती है या दण्डादेश किया जाता है तथा मृत्यु दण्डादेश पारित करने के संबंध में उच्चतम न्यायालय में प्रक्रिया

इस प्रश्न पर विचार करने के पश्चात् कि मृत्युदण्ड के निष्पादन का उचित ढंग क्या है, अब जिस बात की परीक्षा करना शेष रह जाता है वह मृत्युदण्ड को पुष्टि करने की वह प्रक्रिया है जो न्यायालय में अथवा अन्य प्राधिकारियों द्वारा अपनाई जाती है।

ई सी ओ एस ओर्स के संख्यांक 6 में दिया गया रक्षोपाय निम्नलिखित रूप में है,

"उस व्यक्ति को, जिसे मृत्यु का दण्डादेश दिया जाता है, उच्चतर अधिकारिता के न्यायालय के समक्ष अपील करने का अधिकार हो और यह सुनिचित करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए कि ऐसी अपील कानूनी रूप से अनिवार्य हो।"

यही मत न्या. भगवती ने **वचन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** (पूर्वोक्त में) अपनी असहमति के निर्णय में निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया है :

"82 इस विषय पर विचार समाप्त करने से पूर्व मैं यह उल्लेख करना चाहता हूं कि यदि कोई ऐसा उपाय है जिससे मृत्युदण्ड देने के मामले में मनमानी करने के दोष से बचा जा सकता है तो वह यह है कि ऐसी विधि हो जिसमें यह उपबंध हो कि ऐसे प्रत्येक मामले में जिसमें उच्च न्यायालय ने मृत्यु के दण्डादेश की पुष्टि की है, उच्चतम न्यायालय स्वतः मृत्यु दण्डादेश का पुनरीक्षण पूरी न्यायालय के माध्यम से करेगा और मृत्यु दण्डादेश की उच्चतम न्यायालय द्वारा तब तक पुष्टि नहीं की जाए या ऐसा दण्डादेश तब तक नहीं दिया जाए जब तब कि समस्त न्यायालय के समस्त न्यायाधिपति सर्व सम्मति से उसका अनुमोदन नहीं कर देते तथा अपवाद स्वरूप केवल ऐसे मामले होंगे जिन्हें विधि पुष्टि करने के लिए उन दशाओं में सीमित कर देती है जहां अपराधी को इतना निकृष्ट पाया जाता है कि उसका सुधार करना किसी भी उपचार या पुनर्स्थापन की पद्धति से संभव न हो और यह निष्कर्ष निकले कि उसकी मुक्ति के पश्चात् भी वह समाज के लिए एक गंभीर खतरा होगा और इसी कारण से समाज के हित में उसके जीवन का अंत आवश्यक है। तथापि उन कारणों से, जिनकी चर्चा मैं पहले कर चुका हूँ, ऐसे अपवाद स्वरूप मामले व्यावहारिक रूप से कोई भी नहीं होंगे क्योंकि किसी व्यक्ति के बारे में यह भविष्यवाणी करना लगभग असंभव है कि उसे सुधारा नहीं जा सकता या अपराध से छुटकारा नहीं दिलाया जा सकता तथा इसी कारण से, व्यावहारिक दृष्टि से मृत्युदण्ड लगभग समाप्त हो जाएगा। किन्तु केवल सिद्धांत के रूप में ही यह कहना संभव है कि यदि राज्य निश्चित रूप ये यह सिद्ध करने की स्थिति में है कि अपराधी ऐसा सामाजिक दैत्य है कि आजीवन कारावास भोगने तथा सुधार और पुनर्स्थापन के उपचारों से गुजरने के पश्चात् भी वह समाज के योग्य नहीं हो सकता तो ऐसी दशा में उसे मृत्युदण्ड दिया जा सकता है। यदि इस कसौटी को विधि द्वारा ग्रहण किया जाता है और ऊपर उल्लिखित प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए लागू किया जा सकता है तो केवल इस दशा में ही मृत्युदण्ड को मनमानीपन और पूर्वाग्रह के दोषों से बचाया जा सकता है किन्तु विधि जिस रूप में आज है उसमें ऐसा नहीं है।"

विधि आयोग उन कठिनाइयों से भली-भांति परिचित है जो न्यायालयों द्वारा विवेकाधिकार के प्रयोग के लिए मार्ग दर्शक मानक तैयार करने में सामने आएंगी और जिनकी चर्चा न्यायाधिपति हर्लन ने **मेक गोथा** बनाम **केलीफोर्निया** (402 यू. एस. 183) में पृष्ठ 3 पर निम्नलिखित रूप में की है:

"उन व्यक्तियों ने, जिन्होंने मृत्युदण्ड देने के विवेकाधिकार को नियंत्रित करने के उपायों का प्रारूप तैयार करने के वास्तविक प्रयास के कठोर कार्य को हाथ में लिया था, इतिहास ने जो सबक सिखाया है उसकी पुष्टि की है ………। दाण्डिक मानव वध के लक्षणों तथा उन व्यक्तियों के संबंध में जो मृत्युदण्ड का आदेश देते हैं चर्चा करना तथा इन लक्षणों को ऐसे शब्दों में प्रकट करना जिन्हें भली भांति समझा जा सके और दण्डादेश देने वाले प्राधिकारियों द्वारा लागू किया जा सके, ऐसा कार्य प्रतीत होता है जो वर्तमान में मानवीय योग्यता या बुद्धिमत्ता के परे है।"

वचन सिंह के मामले में (पूर्वोक्त) न्या. भगवती ने मृत्यु दण्डादेश देने में जो मनमानीपना है उसके संबंध में निम्नलिखित सुसंगत विचार प्रकट किए हैं :—

"70. मैं जिस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं वह केवल सैद्धान्तिक या किन्ही अन्य तर्कों मात्र पर आधारित नहीं है। गत अनेक वर्षों में दिए गए निर्णयों का विश्लेषण करने पर हम इस निर्णय पर पहुंचे है कि मृत्युदण्ड देने के बारे में जो न्यायिक व्यवहार है वह एक जैसा नहीं है तथा न्याय प्रणाली में मृत्यु दण्ड देने के विषय में कोई संगत मार्गदर्शक सिद्धांत दिखाई नहीं देते हैं। न्यायाधीश अपने ही मूल्यों तथा सामाजिक दर्शन के पैमाने पर मृत्युदण्ड देते हैं या देने से इंकार करते रहे हैं और न्यायिक निर्णयों में इस समस्या के विषय में कोई एक समान प्रणाली अपनाई गई हो ऐसा निकाल पाना संभव नहीं है। निर्णयों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि कुछ न्यायाधीश मृत्युदण्ड को बनाए रखने के प्रति सहज और नियमित रुझान रखते हैं और कुछ अन्य इसी प्रकार से प्रतिकूल रुझान रखते हैं तथा शेष न्यायाधीश की हर मामले में हां या ना की स्थिति रहती है। उच्चतम न्यायालय तक में भी विभिन्न प्रवृत्तियां और मत मृत्युदण्ड देने के विषय में हैं। यदि कोई मामला ऐसी न्यायपीठ के समक्ष आता है जिसमें बैठने वाले न्यायाधीशों को ऐसा विश्वास है कि मृत्युदण्ड का सामाजिक प्रभाव है तो इस बात की पूरी संभावना है कि वे मृत्युदण्ड की पुष्टि करेंगे किन्तु यदि वही मामला किसी ऐसी न्यायपीठ के समक्ष आता है जिसमें बैठने वाले न्यायाधीश चारित्रिक और नैतिक रूप से मृत्युदण्ड के विरुद्ध हैं तो इस बात की अधिक संभावना है कि मृत्युदण्ड को वे आजीवन कारावास में परिणित कर देंगे। प्रथम वर्ग के न्यायाधीश मृत्युदण्ड के न्यायोचित होने के बारे में 'विशेष कारण' तलाश लेंगे जो ऐसे न्यायाधीशों के मस्तिष्क में चल रहे मनोवैज्ञानिक और व्यवहार संबंधी तर्कों का परिणाम होगा और यह बात मैं उनके प्रति किसी अवमानना या क्षोभ की भावना से नहीं कह रहा हूं तथा दूसरी ओर द्वितीय श्रेणी में आने वाले न्यायाधीश ऐसे कारणों को किसी विशेष कारणों का सहारा लेकर खारिज कर देंगे। यह भी बहुत संभव है कि एक ही न्यायपीठ, अपने सैद्धान्तिक विचारों के कारण यह सोचे कि ऐसे विशेष कारण हैं जिनके आधार पर किसी मामले में मृत्युदण्ड दिया जाना चहिए जबकि दूसरी न्यायपीठ सद्भावपूर्वक और अपनी आत्मा की आवाज के आधार पर कोई दूसरा मत प्रकट करे और यह निर्णय दे कि मृत्युदण्ड देने के लिए कोई विशेष कारण नहीं है और केवल आजीवन कारावास दिया जाना चाहिए। दोनों में से कौन सही है और कौन गलत है इस बात को उद्देश्यपूर्वक और तर्क सहित स्थापित करना संभव नहीं है क्योंकि विधानमण्डल द्वारा इस विषय में कोई व्यापक मानक या मार्ग निर्देश न देने के कारण इस प्रकार के मामले में स्वविवेक का प्रयोग निश्चित ही न्यायपीठ में बैठने वाले न्यायाधीशों की अपनी प्रवृति और सिद्धांत से प्रभवित होगा। विवेक के प्रयोग पर न्यायाधीशों की मूल्य प्रणाली, अपने-अपने अनुभव के रंग का तथा उनकी अपनी दिलचस्पियों और पूर्वाग्रहों के स्वरूप तथा विविधता का प्रभाव भी पड़ेगा। मृत्युदण्ड देने में इस प्रकार की मनमानी हमारे न्यायालयों के भंगितापूर्ण पीठ गठन के कारण भी अधिकांशतः प्रभावित होती है क्योंकि न्यायपीठों का गठन अपरिहार्य रूप से, समय-समय पर विभिन्न संयोजनों पर आधारित होता है तथा मानववध के अपराधों से संबंधित मामले कभी किसी एक न्यायपीठ के समक्ष सुनवाई के लिए आते हैं तो कभी किसी दूसरी न्यायपीठ के समक्ष और कभी किसी तीसरी न्यायपीठ के समक्ष और यह क्रम चलता रहता है। प्रो. ब्लेक शील्ड ने जनरल आफ द इंडियन ला इंस्टिट्यूट के 21वें वाल्यूम में प्रकाशित "केपिटल पनिशमेन्ट इन इंडिया" (अप्रैल—जून 1979 के अंक के पृष्ठ 137-226) में यह इंगित किया है कि किस प्रकार से न्यायपीठ के गठन की पद्धति मृत्युदण्ड देने के विषय में मनमानीपन को बढ़ावा देती है। जहां तक उच्चतम न्यायालय का संबंध है यह भली-भांति विदित है कि गतवर्षों में

न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि हुई है, मृत्युदण्ड के मामलों को सुनने वाली न्यायपीठों में बैठने वाले न्यायाधीशों की संख्या में वास्तव में कमी हुई है। इस समय ऐसे अधिकांश मामलों की सुनवाई दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा की जाती है। प्रो.ब्लैकशील्ड ने ऐसे 70 मामले ढूंढ निकाले हैं जिनमें उच्चतम न्यायालय को मानववध के अपराधी को दण्डादेश देते समय मृत्यु और जीवन के बीच चुनाव करना पड़ा तथा इन सत्तर मामलों का विश्लेषण करते हुए उक्त प्रोफेसर महोदय ने यह उल्लेख किया है कि 28 अप्रैल 1972 से 8 मार्च 1976 तक की अवधि में उच्चतम न्यायालय के केवल 11 न्यायाधीशों ने ऐसे मामलों में से 10 प्रतिशत या अधिक् में भाग लिया। उक्त प्रोफेसर महोदय ने इन 11 न्यायाधीशों की एक सूची उदारता के उत्तरोत्तर क्रम में प्रस्तुत की है जिसका आधार प्रत्येक न्यायाधीश के प्लस वोटों (अर्थात् मृत्युदण्ड के पक्ष में वोट) और कुल वोटों के बीच अनुपात है और प्रोफेसर महोदय ने यह उल्लेख किया है कि यह आंकड़े यह दर्शाते हैं कि मृत्यु और जीवन के प्रश्न पर न्यायाधीशों के निर्णयों में कैसी भिन्नता है। यह ध्यान देने योग्य है कि प्रो. ब्लेकशील्ड द्वारा विश्लेषण किए गए 70 मामलों में से 37 मामलों का संबंध दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 354 की उपधारा (5) लागू होने के पश्चात् की अवधि से है। यदि 8 मार्च 1976 के पश्चात्, जो वह तारीख है जब तक कि मामलों का सर्वेक्षण प्रो. ब्लैकशील्ड ने किया है, उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत मामलों के संदर्भ में इसी प्रकार का विश्लेषण किया जाए तो ऐसे विश्लेषण से भी निर्णयों में विसंगति और मनमानीपन का वही नमूना सामने आयेगा और यह प्रकट होगा कि मृत्यु प्रदान की जाए या न की जाए यह बात बहुत हद तक न्यायपीठ के गठन पर आधारित होती है। उदाहरण के लिए 9 फरवरी 1979 को निर्णीत **राजेन्द्र प्रसाद** का मामला [1979 3 एस सी सी 646] देखा जा सकता है। इस मामले में राजेन्द्र प्रसाद को दिया गया मृत्यु का दण्डादेश न्या. कृष्णा अय्यर तथा देसाई के बहुमत से आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया गया था और न्या. सेन ने असहमति प्रकट की थी और यह मत प्रकट किया था कि मृत्यु-दण्डादेश की पुष्टि की जानी चाहिए। इसी प्रकार से हमारे समक्ष अन्य मामलों में से एक में, अर्थात्, **वचन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** [पंजाब 1979 (3) एस सी सी 727] में, जब उसकी प्रथम सुनवाई न्या. केलासम तथा सरकारिया ने की थी, न्या. केलासम का यह निश्चित मत था कि **राजेन्द्र प्रसाद** [(1979) 3 एस सी सी 646] के मामले में बहुमत का निर्णय गलत था और इसी कारण से न्या. केलासम ने मामले को संविधान पीठ को भेज दिया। इसी प्रकार से **दलवीर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** (पंजाब 3 एस सी सी 745) में न्या. कृष्णा अय्यर तथा देसाई के बहुमत निर्णय में यह मत प्रकट किया गया कि दलवीर सिंह को दिए गए मृत्यु-दण्डादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित किया जाना चाहिए जबकि न्या.ए.पी. सेन उसी मूल मत पर डटे रहे जो उन्होंने राजेन्द्र प्रसाद के मामले [(1979) 3 एस सी सी 646] में प्रकट किया था और उनका रुख मृत्युदण्ड को पुष्ट करने की ओर था। स्पष्ट हो जाता है कि मृत्युदण्ड दिए जाए या न दिया जाए इस बारे में विवेकाधिकार का प्रयोग काफी हद तक न्यायपीठ में बैठने वाले न्यायाधीशों की मूल्य प्रणाली और सामाजिक दर्शन पर आधारित होता है।

71. मृत्युदण्ड देने में भ्रम की स्थिति का एक सजग उदाहरण हाल ही के एक मुकदमें में (**हरवंश सिंह** बनाम **उ.प्र. राज्य**) [(1982) 2 एस सीसी 101] में देखने को मिला जिसमें तीन अभियुक्त थे, अर्थात् जीता सिंह, कश्मीरा सिंह और हरिवंश सिंह। इन तीनों व्यकितियों को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने 20 अक्टूबर, 1975 के अपने निर्णय और आदेश से मृत्यु का दण्डादेश दिया था क्योंकि इन लोगों ने चार व्यक्तियों की संयुक्त रूप से हत्या में बराबरी का भाग लिया था। इनमें से प्रत्येक ने उच्चतम न्यायालय में मृत्यु दण्डादेश के सामान्य निर्णय के विरुद्ध अपील के लिए विशेष अनुमति के वास्ते पृथक्-पृथक् याचिकाएं की। जीता सिंह की याचिका की सुनवाई न्या. चन्द्रचूढ़ (उस समय वह जिस पद पर थे) न्या. कृष्ण अय्यर तथा न्या. एन.एल. उंटवालिया की पीठ के समक्ष हुई और पीठ ने यह याचिका 15 अप्रैल, 1976 को खारिज कर दी। कश्मीरा सिंह की विशेष अनुमति याचिका एक दूसरी पीठ के समक्ष सुनवाई के लिए रखी गई जिस पीठ में मैं तथा न्या. फज़ल अली थे। हमने केवल सीमित प्रश्न पर याचिका की अनुमति दी और 10 अप्रैल, 1977 के आदेश द्वारा उसकी अपील मंजूर करते हुए मृत्यु दण्ड के स्थान पर आजीवन कारावास के दण्ड का आदेश दिया। परिणाम यह हुआ कि एक पीठ ने कश्मीरा सिंह के मृत्युदण्ड को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया और दूसरी पीठ में जीता सिंह को दिए गए मृत्यु दण्डादेश की पुष्टि कर दी और उसे 6 अक्टूबर, 1981 को फांसी दे दी गई जब कि परिवार की हत्या में दोनों ने बराबर भाग लिया था और एक मामले को दूसरे मामले से भिन्न करने के लिए कोई कारण नहीं था। हरवंश सिंह की विशेष याचिका बाद में सुनी गई और यह सुनवाई एक तीसरी पीठ ने की जिसमें न्या. सरकारिया और सिंघल सम्मिलित थे और इस पीठ ने 16 अक्टूबर, 1978 को हरवंश सिंह की याचिका खारिज

कर दी जिसके निर्णय के विरुद्ध उसने पुनरीक्षण का आवेदन किया किन्तु यह आवेदन 9 मई, 1980 को न्या. सरकरिया तथा न्या. ए.पी. सेन ने खारिज कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि इस न्यायालय की रजिस्टरी ने अपनी कार्यपालक रिपोर्ट में यह उल्लेख कर दिया था कि कश्मीरा सिंह के मृत्युदण्ड को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया गया था किन्तु इस तथ्य की जानकारी न्यायालय को उस समय विनिर्दिष्ट रूप से नहीं दी गई जब हरवंश सिंह की विशेष अनुमति याचिका और पुनरीक्षण आवेदन खारिज किए गए थे। चूंकि इस न्यायालय ने हरवंश सिंह की विशेष अनुमति याचिका को खारिज कर दिया था उसे और जीता सिंह दोनों को 6 अक्टूबर, 1981 को फांसी लगनी चाहिए थी किन्तु हरवंश सिंह का यह सौभाग्य है कि उसने इस न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दाखिल कर दी और इस याचिका पर न्यायालय ने उसके मृत्युदण्ड के निष्पादन पर रोक लगाने का आदेश दे दिया। जब यह रिट याचिका सुनवाई के लिए एक दूसरी पीठ के समक्ष प्रस्तुत हुई जिस पीठ में मुख्य न्यायाधिपति श्री चन्द्रचूढ़ तथा न्या. सी.जे. देसाई तथा ए. एन. सेन थे तथा न्यायालय को यह बताया गया कि एक अन्य पीठ ने जिसमें न्या. फज़ल अली और मैं थे, कश्मीरा सिंह को दिए गए मृत्युदण्ड को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया था और जब न्यायाधीशों को यह तथ्य ज्ञात हुआ तो पीठ ने निर्देश दिया कि इस मामले को राष्ट्रपति के पास हरवंश सिंह द्वारा दाखिल दया याचिका पर पुनः विचार करने के लिए वापिस भेज दिया जाए।

यह एक असाधारण मामला है जो मृत्युदण्ड दिए जाने के मामलों में, जो दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 354(5) से शासित है, न्यायिक विभ्रम को प्रकट करता है और स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि किस प्रकार से मृत्युदण्ड देने के मामले पीठ के गठन से प्रभावित होते हैं। अभियुक्त निश्चित रूप से यह प्रश्न पूछ सकता है कि जिस रूप में पीठ का समय-समय पर गठन होता है उसे जीवन मिलेगा या मृत्यु मिलेगी? क्या यह अनु. 14 और 21 में दी गई मौलिक गारंटी का स्पष्ट उल्लंघन नहीं है

72. यदि हम गत अनेक वर्षों में न्यायालय द्वारा दिए निर्णयों का अध्ययन करें तो हम पाएंगे कि न्यायाधीशों ने मृत्युदण्ड की पुष्टि करने के लिए अथवा उसका अल्पीकरण करने के लिए अच्छे तर्कों का आश्रय लिया है किन्तु यदि उन तर्कों का विश्लेषण किया जाए तो यह प्रकट होगा कि उनमें एकरूपता नहीं है। यह सब कुछ विधान मण्डल द्वारा ऐसे व्यापक मानदण्ड या मार्गनिर्देश न देने का अपरिहार्य परिणाम है जिन मार्गनिर्देशों द्वारा मृत्यु-दण्ड देने के मामलों में न्यायालय के विवेकाधिकार के प्रयोग के बारे में दिशा प्रदान की जा सकती है। तथापि मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि अपना यह आशय प्रकट करते समय मैं यह सुझाव नहीं देना चाहता कि यदि विधान मण्डल मोटे तौर पर मानक या मार्गनिर्देश दे भी दे तब भी उससे मृत्यु-दण्ड के मामले में यह आवश्यक नहीं है कि मनमानीपन तथा विभ्रम के दोषों से बचा जा सकेगा ....किन्तु पर्याप्त मानक या मार्ग निर्देश तैयार करने से या तैयार करने से मनमानीपन और विभ्रम का उपचार भले ही हो या न हो किन्तु यह एक सच्चाई है कि वर्तमान में विधानमण्डल ने ऐसे किन्हीं मानकों या मार्गनिर्देशों का उपबंध नहीं किया है। इसका परिणाम यह है कि न्यायालय हत्या के अपराध के लिए मृत्यु या आजीवन कारावास के दण्ड का चयन करने की स्थिति में विवेकाधिकार के प्रयोग करने के लिए मार्गनिर्देश विहीन और दिशा विहीन है और इसके कारण अत्यधिक मनमानीपन और अनिश्चिय की स्थिति रहती है। निर्णीत मामलों के अध्यन से यह स्पष्ट है और साफ दिखाई पड़ता है कि विभिन्न मामलों में न्यायालय द्वारा मृत्युदण्डादेश की पुष्टि करने या उसका अल्पीकरण करने के लिए जिन कारणों का आश्रय लिया जाता है उनमें तारतम्य का अभाव है। डा. रायजादा ने डाक्टरेट की उपाधि के लिए अपने विशाल अध्ययन में जिसका शीर्षक ट्रेन्डस इन सेन्टेसिंग; ए स्टडी ऑफ इम्पोरटेन्ट पीनल स्टेट्यूटस एण्ड ज्यूडीशियल प्रोनाउंसमेन्टस ऑफ द हाई कोर्ट एण्ड सुप्रीम कोर्ट'' है। इस अध्ययन में न्यायालय के अनेक ऐसे निर्णय निकाले गये है जिनमें परस्पर विरोधी निर्णय दिए गए हैं और न्यायाधीशों ने प्रायः किन्ही मानकों या मार्गनिर्देशों को विहित करने या उनका पालन करने में अपनी असमर्थता जताई है। डा. रायजादा ने 1976 तक के मामलों को मृत्युदण्ड देने या देने से इंकार करने की बाबत न्यायालयों द्वारा दिए गए कारणों के आधार पर वर्गीकृत किया है। उनके द्वारा किया गया विश्लेषण अत्यन्त लाभप्रद और प्रकाश डालने वाला है।

(i) अनेक मामलों में, मृत्युदण्ड देने के बारे में न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों में से एक यह है कि हत्या 'जघन्य', 'अकारण', 'जानबूझकर', 'उत्तेजनारहित', 'मृत्युपरिणामी', 'घृणित', 'दुष्टतापूर्ण', 'उदण्ड' या 'क्रूर हिंसात्मक' थी। किन्तु हत्या की प्रकृति का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त ये सभी लेविल अपराध की प्रकृति और अपराध करने की रीति के प्रति न्यायालय की नफरत की मात्रा मात्र के द्योतक हैं और यह संभव है कि विभिन्न न्यायाधीश इनमें

से प्रत्येक स्थिति में विभिन्न प्रतिक्रियाएं दर्शाएं तथा इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि कुछ न्यायाधीश उक्त कारणों को मृत्युदण्ड देने के लिए संगत न समझें और इसीलिए उक्त कारणों को 'विशेष कारणों' का दर्जा प्रदान न करें। वास्तव में ऐसे अनेक मामले हैं जहां उक्त वर्गों में आने वाली हत्या के मामले में भी न्यायालय ने मृत्युदण्ड देने से इंकार कर दिया है उदाहरण के लिए **जनारधरण** का मामला जिसकी अपील का निर्णय **राजेन्द्र प्रसाद** की अपील के साथ किया गया था, और जिस मामले में जनारधरण ने अपनी मासूम पत्नी और बच्चों को रात्रि के अंधेरे में मार डाला था और हत्या जानबूझकर और विचारपूर्वक की गई थी तथा अत्यन्त क्रूरतापूर्ण थी किन्तु फिर भी न्या. कृष्णा अय्यर तथा न्या. देसाई ने बहुमत से मृत्युदण्ड को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया था। इसी प्रकार से दुबे ने तीन-तीन हत्याएं की थीं और फिर भी उक्त दोनों विद्वान न्यायाधीशों ने, अर्थात्, न्या. कृष्णा अय्यर तथा न्या. देसाई ने उसके मृत्युदण्ड को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया था। अत: यह स्पष्ट है कि ऊपर उल्लिखित हत्या के स्वरूपों से कोई स्पष्ट सुपरिभाषित प्रवर्गों का संकेत नहीं मिलता है अपितु वे हत्या के बारे में न्यायिक प्रतिक्रिया की गंभीरता के द्योतक मात्र हैं और वे सभी न्यायाधीशों द्वारा एकरूपतापूर्वक नहीं अपनाए जा सकते हैं और यदि हत्या उक्त प्रवर्गों में से किसी के अंतर्गत आती भी हो तब भी कुछ न्यायाधीशों ने उस कारण को सुसंगत माना है और कुछ ने असंगत माना है तथा मृत्युदण्ड दिया जाना चाहिए या नहीं दिया जाना चाहिए इसका अवधारण करने में ऐसे कारण को एकरूपता के साथ प्रमुख कारण नहीं माना है।

(ii) ऐसे मामले भी है जहां धारा 34 और धारा 149 के अंतर्गत आने वाले अनुमानित या संयुक्त दायित्व के आधार पर मृत्युदण्ड दिया गया है। [देखिए **बाबू** बनाम **उ.प्र. राज्य** (1965) 2 एस सी आर 771], **मुख्तयार सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** (1972) 4 एस सी सी 843), **मसाल्ती** बनाम **उ.प्र. राज्य** [(1964) 8 एस सी आर 133 और **गुरूचरण सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** [(1963) 3 एस सी आर 585]। किन्तु उतने ही ऐसे मामले भी हैं जहां इस कारण मृत्युदण्ड नहीं दिया गया है क्योंकि अभियुक्त का आपराधिक दायित्व केवल धारा 34 या धारा 149 के अंतर्गत था। ऐसे अपराधी को, जिसने प्राणघात स्वयं नहीं किया किन्तु जो हत्या करने में अन्य हत्यारों के साथ था और जो मामले धारा 34 व 149 के अंतर्गत आते थे, मृत्युदण्ड देने या देने से इंकार करने के लिए कोई सुस्थापित मानदण्ड नहीं था।

(iii) अपराध के अल्पीकरण के कारणों की बाबत भी ऐसी ही विरोधात्मक स्थिति है। मृत्युदण्ड को आजीवन कारावास में परिवर्तित करने के प्रयोजनों के लिए प्राय: जिस अल्पीकारक कारण का आश्रय लिया जाता है उनमें से एक अपराधी की अल्पआयु है। किन्तु उच्चतम न्यायालय ने इसका प्रयोग भी पूरी मनमानी के साथ किया है। ऐसे अनेक मामले हैं, जैसे, **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सम्मन दास** [(1927) 3 एस सी सी 201] **रघुवीर सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य** [(1975) 3 एस सी सी 37] और **गुरुदास सिंह** बनाम **राजस्थान राज्य** [(1975) 4 एस सी सी 490], जहां उच्चतम न्यायालय ने अपीलार्थी के कौमार्य को आधार बनाकर मृत्युदण्ड देने से इंकार कर दिया उतनी ही संख्या में ऐसे मामले भी हैं जहां उच्चतम न्यायालय ने यह मत अपनाया कि कौमार्यावस्था दण्ड को कम करने के लिए आधार नहीं थी, जैसे **भगवान स्वरूप** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** [(1971) 3 एस सी सी 759] तथा **राघोमणी** बनाम **उ.प्र. राज्य** [(1976) 4 एस सी सी 297]। इसके अतिरिक्त इस विषय में भी मत विधिमान्य है कि कितनी आयु तक के अपराधी को दण्ड के अल्पीकरण के योग्य माना जा सकता है। परिणाम यह है कि, जैसा कि डा. रायजादा ने उल्लेख किया है कतिपय स्थितियों में कौमार्यावस्था के अपराधियों को, जिन्होंने एक से अधिक हत्याएं कीं, आजीवन कारावास का अल्प दण्ड दिया गया जबकि अन्य मामलों में ''जहां न तो अनेक व्यक्तियों की हत्या की गई थी और न जिनमें उच्च मूल्य की सम्पत्ति अंतग्रस्त थी'' अपराधियों को मृत्युदण्ड दिया गया।

(iv) उदारता बरतने योग्य एक अन्य कारण, जिसे प्राय: ध्यान में रखा जाता है, अंतिम रूप से सजा सुनाने में होने वाला विलम्ब है। दण्डादेश के पश्चात् विलम्ब के इस कारण पर कई मामलों में बहुत जोर दिया गया था, जैसे, **एडीगा-अन्मा** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य** [(1974) 4 एस सी सी 443], **चावला** बनाम **हरियाणा राज्य** [(1974) 4

एस सी सी 579], **रघुवीर सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य** [(1975) 3 एस सी सी 37], **भूर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** [(1974) 4 एस सी सी 754], **पंजाब राज्य** बनाम **हरी सिंह** [(1974) 4 एस सी सी 552] तथा **गुरुदाय सिंह** बनाम **राजस्थान राज्य** [(1975) 4 एस सी सी 490] और इन मामलों में आजीवन कारावास का अल्पदण्ड देने के प्रयोजन के लिए विलम्ब को एक कारण माना गया था। वास्तव में, **रघुवीर सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य** [(1975) 3 एस सी सी 37] के मामले में यह तथ्य कि बीस माह तक मृत्युदण्ड का भय अपराधी की आत्मा को सताता रहा होगा, अपराधी की सजा कम करने के लिए पर्याप्त आधार माना गया था किन्तु उतनी ही संख्या में ऐसे अनेक मामले हैं जहां इस बात के होते हुए भी कि अपील का अंतिम रूप से निस्तारण करने में दो या उससे अधिक वर्ष लग गये थे, मृत्युदण्ड की पुष्टि की गई (देखिए, **रिषि देव पाण्डेय** बनाम **उ.प्र. राज्य** (ए आई आर 1955 एस सी सी 331), **भारवाड़ मेपा दाना** बनाम **मुम्बई राज्य** (1960) 2 एस सी आर और डा. रायजादा द्वारा अध्याय 3 के फुटनोट 186 में दिए गए अन्य मामले। ये निर्णीत मामले यह दर्शाते हैं कि लम्बी कार्यवाही की कितनी निश्चित अवधि के आधार पर अपराधी छूट का हकदार हो सकता है। विलम्ब के कारण को महत्व दिया जाना चाहिए या नहीं और यदि दिया जाए तो किस सीमा तक, ये ऐसे विषय हैं जो पूर्ण रूप से न्यायालय के विवेकाधिकार के अंतर्गत आते हैं और किसी निश्चितता के साथ यह कहना संभव नहीं है कि सजा सुनाने के पश्चात् विलम्ब की कितनी अवधि के कारण अपराधी को मत्युदण्ड से छुटकारा मिल सकता है। विलम्ब के कारण के आधार पर सजाओं में विभिन्नता का एक अनिवार्य परिणाम यह है कि मृत्युदण्ड देना एक प्रकार से लगभग एक न्यायिक लाटरी बनकर रह जाता है। यदि अपराधी के मामले में अभियोजन पक्ष, अभियुक्त का वकील, सेशन न्यायालय, उच्च न्यायालय और उच्च्तम न्यायालय शीध्र कार्यवाही करते हैं तो ऐसे अपराधी को विलम्ब के कारण के आधार पर मृत्युदण्ड को कम किए जाने का लाभ प्राप्त नहीं होता है। यदि दूसरी ओर, कार्यवाही यथाशीघ्र नहीं की जाती, चाहे जानबूझकर या स्वाभाविक रूप से, तो अभियुक्त मृत्युदण्ड से बच सकता है किन्तु यह जब तक किन्हीं अन्य कारणों से न्यायिक विभिन्नता पैदा न हो जाए। दूसरे शब्दों में, कार्यवाही जितनी दक्षतापूर्वक की जाएगी मृत्युदण्ड उतना ही निश्चित होगा और इसके विपरीत परिणाम भी हो सकता है।

(v) अभियुक्त की अनैतिक संबंधों में लिप्तता को भी माफी दी गई है और इसके परिणामस्वरूप, **रघुवीर सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य** [(1975) 3 एससीसी 3 तथा **वंसल लक्ष्मण मोरे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** (1974) 4 एस सी सी 778] में इसे सजा कम देने योग्य कारण माना गया है जबकि **लजर मसीह** बनाम **उ.प्र. राज्य** [(1976) 1 एस सी सी 806] के मामले में ऐसे संबंधों की निंदा की गई है और परिणाम स्वरूप इसे एक उद्यापक कारण माना गया है। इस प्रकार से, जहां तक इस कारण का संबंध है, इसके बारे में भी एक रूपता नहीं है।

73. ये सभी कारण पृथक पृथक रूप में और कुल मिलाकर न केवल यह प्रकट करते हैं कि उच्च न्यायालयों और उच्च्तम न्यायालय द्वारा मृत्युदण्ड देने के मामले में वे अत्याधिक प्रभाव कारक हैं अपितु यह भी दर्शाते हैं कि वास्तव में मृत्युदण्ड मनमानी तौर पर और तर्कहीनता के आधार पर दिया जाता रहा है। (देखिए, ''आरवेट्रेरीनेस आफ ज्यूडीशियल इम्पोजिशन आफ केपीटल पनिशमेन्ट'' विषय पर डा. उपेन्द्र बक्शी की टिप्पणी)।

हम इस तथ्य का उल्लेख कर चुके हैं कि जहां मृत्युदण्ड महासेना न्यायालय (कोर्ट मार्शल) द्वारा दिया जाता है, जिसमें पांच अधिकारी होते है, वहां मृत्यु दण्ड केवल तभी दिया जा सकता है जब दो तिहाई का बहुमत हो न कि केवल साधारण बहुमत।

उच्चतम न्यायालय में अपील का अधिकार

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 में ऐसे अनेक उपबंध है जो उच्च न्यायालय को मृत्युदण्ड देने या उसकी पुष्टि करने की शक्ति प्रदान करते है। संहिता की धारा 368 के अंतर्गत, उच्च न्यायालय सेशन न्यायालय द्वारा दिए गए मृत्यु दण्डादेश की पुष्टि कर सकता है। उच्च न्यायालय किसी अधीनस्थ के समक्ष लम्बित किसी मामले को अपने हाथ में ले सकता है और उसका

विचारण करके मृत्युदण्ड दे सकता है (द.प्र.स. की धारा 407) सेशन न्यायालय द्वारा दिए गए मुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील में उच्च नयायालय किसी व्यक्ति को सिद्धदोष ठहरा सकता है और मृत्युदण्ड का आदेश दे सकता है (द.प्र.सं. की धारा 386(क))। इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय, सजा में वृद्धि करने की शक्ति का प्रयोग करते हुए, मृत्युदण्ड दे सकता है। (द.प्र.सं. की धारा 386(ग))। आज जो स्थिति है, सभी मामलों में जिनमें उच्च न्यायालय ने मृत्यु का आदेश दिया हो, अधिकार के रूप में अपील उच्चतम न्यायालय में नहीं की जा सकती।

निम्नलिखित मामलों में, जहां उच्च न्यायालय ने मृत्यु का दण्डादेश दिया हो, उच्चतम न्यायालय में अपील अधिकार के रूप में दायर की जा सकती है :—

(i) जहां उच्च न्यायालय अपनी असाधारण दाण्डिक अधिकारिता का प्रयोग करते हुए स्वयं विचारण करके किसी व्यक्ति को सिद्धदोष ठहराए। (द.प्र.सं. की धारा 374(1))।

(ii) जहां उच्च न्यायालय ने किसी अधीनस्थ न्यायालय से किसी मामले को अपने द्वारा विचारण के लिए अपने हाथ में ले लिया हो और ऐसे विचारण में अभियुक्त को सिद्धदोष ठहराया जाए तथा उसे मृत्युदण्ड दिया जाए। (भारत के संविधान का अनु. 134)।

(iii) जहां उच्च न्यायालय ने अपील में किसी अभियुक्त की मुक्ति के आदेश को पलट दिया हो और उसे मृत्युदण्ड दिया हो। संविधान का अनु. 134(1)(क) उच्चतम न्यायालय (दाण्डिक अपीली अधिकारिता का विस्तारण) अधिनियम, 1970 की धारा 2 (द.प्र.सं. की धारा 379)।

(iv) उच्चतम न्यायालय में अपील करने के अधिकार का उपबंध वहां भी है जहां उच्च न्यायालय ने अपील में अभियुक्त की मुक्ति के आदेश को पलट दिया हो और उसे आजीवन कारावास का या दस वर्ष अथवा अधिक की अवधि के कारावास का दण्ड दिया हो। (द.प्र.सं. की धारा 379 तथा 1970 के उपरोक्त अधिनियम की धारा 2)।

तथापि, निम्नलिखित मामलों में किसी भी व्यक्ति को, जिसके विरुद्ध उच्च न्यायालय ने मृत्यु का दण्डादेश दिया है या उसकी पुष्टि की है, **अधिकार के रूप** में उच्चतम न्यायालय में अपील करने का उपबंध नहीं है :—

(i) जहां उच्च न्यायालय सेशन न्यायालय द्वारा दिए गए मृत्यु दण्डादेश की द.प्र.सं. की धारा 368 के अंतर्गत पुष्टि करता है वहां उच्चतम न्यायालय में अधिकार के रूप में कोई अपील नहीं की जा सकती। इस विषय में **के. गोविन्द स्वामी** बनाम **भारत सरकार** में मद्रास उच्चतम न्यायालय की पूर्व पीठ द्वारा दिया गया निम्नलिखित निर्णय भी सुसंगत है :—

> ''अतः, द.प्र.सं., 1973 की धारा 368 के अंतर्गत पारित मृत्युदण्डादेश की पुष्टि करने के आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में तथ्यों पर प्रथम अपील का कोई अधिकार नहीं है और तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि उच्च न्यायालय, संविधान के अनुच्छेद 134(1)(ग) के अंतर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्चतम न्यायालय में अपील करने की अनुमति प्रदान न कर दे अथवा अनु. 136(1) के अंतर्गत अपील करने के लिए विशेष अनुमति प्रदान न कर दे।''

चन्द्र मोहन तिवारी बनाम **म.प्र. राज्य,** एआई आर 1992 एस सी 891, में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि उन मामलों में, जो अनु. 134(1)(क) और (ख) अथवा उच्चतम न्यायालय (दाण्डिक अपीली अधिकारिता का विस्तारण) अधिनियम, 1970 की धारा 2 (क) और (ख) अथवा द.प्र.सं. की धारा 379 के अंतर्गत नहीं आते हैं, उच्चतम न्यायालय में अपील केवल तब ही की जा सकती है जब या तो उच्चतम न्यायालय ने भारत के संविधान के अनु. 134(1)(ग) के अंतर्गत प्रमाण पत्र मंजूर कर दिया हो अथवा उच्चतम न्यायालय ने अनु. 136 के अंतर्गत अपील करने के लिए विशेष अनुमति मंजूर कर दी हो।

इसका अर्थ यह हुआ कि उस व्यक्ति की दशा में, जिसे सेशन न्यायालय द्वारा दिए गए मृत्यु के दण्डादेश की उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि कर दी गई हो, उच्चतम न्यायालय में कोई अपील अधिकार के रूप में नहीं की जा सकती।

(ii) द०प्र० सं० की धारा 377 के अनुसार, यथास्थिति, राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार विचारण न्यायालय द्वारा पारित दण्डादेश के विरुद्ध, अपर्याप्तता के आधार पर लोक अभियोजक को उच्च न्यायालय में अपील फाइल करने का निदेश दे सकती है। उच्च न्यायालय, सिद्धदोष को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात्, सजा में वृद्धि करके मृत्यु का दण्डादेश दे सकता है। [द०प्र० सं० की धारा 368 (ग)(i)]।

विचारण न्यायालय द्वारा पारित दण्ड में उच्च न्यायालय केवल वहां वृद्धि कर सकता है जहां राज्य द्वारा दण्ड के विरुद्ध अपील की गई हो और वहां भी कर सकता है जहां दण्ड की अपर्याप्तता के आधार पर राज्य ने कोई अपील न की हो किन्तु उच्च न्यायालय द०प्र०सं० की धारा 401 के साथ पठित धारा 397 के अंतर्गत विहित पुनरीक्षण शक्ति का स्वयं प्रयोग करते हुए दण्ड में वृद्धि कर सकता है। उच्चतम न्यायालय ने **नादिर खान** बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन),** ए आई आर 1976 एस सी 2205, में निर्णय दिया है कि उच्च न्यायालय को अपनी दाण्डिक पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी उचित मामले में स्वयं दण्ड में वृद्धि करने की धारा 377 में उपबंधित के अनुसार शक्ति है भले ही दण्ड की पर्याप्तता के आधार पर कोई अपील न भी की गई हो। **साहिब सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य,** ए आई आर 1990 एस सी 1188, में भी उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि अपील करने में राज्य सरकार की ओर से असफलता के कारण, उच्च न्यायालय, द०प्र०सं० की धारा 401 के साथ पठित धारा 397 के अंतर्गत पुनरीक्षण की शक्ति का स्वयं प्रयोग करने से वंचित नहीं है क्योंकि उच्च न्यायालय को स्वयं अपने किसी भी अधीनस्थ न्यायालय की कार्यवाही का अभिलेख मांगने की शक्ति प्राप्त है किन्तु उच्च न्यायालय को दण्ड में वृद्धि करने से पूर्व सिद्ध दोष व्यक्ति को दण्ड के प्रश्न पर नोटिस देकर या तो अभियुक्त द्वारा स्वयं उपस्थित होकर अथवा अपने वकील के माध्यम से, सुनवाई का अवसर प्रदान करना होगा। [**सुरजीत सिंह** बनाम **पंजाब राज्य,** ए आई आर 1984 एस सी 1910 (2) भी देखिए।]

यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय भी अपनी पुनरीक्षण शक्ति के अंतर्गत स्वयं ही दण्ड में वृद्धि कर सकता है भले ही राज्य द्वारा अपील की गई हो या नहीं किन्तु जहां उच्च न्यायालय विचारण न्यायालय द्वारा पारित दण्ड में वृद्धि करता है और मृत्युदण्ड का आदेश देता है वहां दण्ड में वृद्धि के आदेश के विरुद्ध कोई अपील उच्चतम न्यायालय में, **अधिकार के रूप में,** दाखिल नहीं की जा सकती है।

ऊपर उल्लिखित दोनों ही परिस्थितियों में, जैसी कि ऊपर चर्चा की गई है, अधिकार के रूप में, उच्चतम न्यायालय में उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध, जिसमें मृत्यु का दण्डादेश दिया गया हो, अपील वहीं फाइल की जा सकती है जहां या तो भारत के संविधान के अनु० 134 (1)(ग) के अंतर्गत ऐसा प्रमाण-पत्र उच्च न्यायालय द्वारा मंजूर किया गया है कि वह मामला उच्चतम न्यायालय में अपील के योग्य मामला है अथवा जब उच्चतम न्यायालय स्वयं भारत के संविधान के अनु० 136(1) के अंतर्गत अपील करने की अनुमति प्रदान करता है। किन्तु ऐसी परिस्थितियों में **अधिकार के रूप में** कोई अपील उच्चतम न्यायालय में नहीं की जा सकती।

सेना अधिनियम, 1950, वायु सेना अधिनियम, 1950, नौसेना अधिनियम, 1957 के अधीन गठित सेना न्यायायलय द्वारा मृत्युदण्ड का आदेश दिया जा सकता है और उसकी पुष्टि केन्द्रीय सरकार द्वारा या अन्य प्राधिकारियों द्वारा की जानी होती है किन्तु आज के दिन ऐसा कोई उपबंध नहीं है जिसके अंतर्गत ऐसे आदेश के विरुद्ध अपील की जा सके। संविधान के अनु० 136 (1) के अंतर्गत भी सेना न्यायालय के ऐसे आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील के लिए विशेष अनुमति प्राप्त नहीं की जा सकती क्योंकि भारत के संविधान के अनु. 136(2) के अंतर्गत यह वर्जित है।

यह उल्लेख किया जा सकता है कि सिविल मामलों में अपील के अधिकार की गारंटी 1979 तक संविधान के असंशोधित अनु. 133 के अधीन तब थी जब विवाद विषय का आर्थिक मूल्य 20,000 रु० से अधिक होता था। इसी प्रकार से

अधिवक्ता अधिनियम, 1961 के अंतर्गत भी भारत की विधिज्ञ परिषद् के विनिश्चिय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार दिया गया है जो निम्नलिखित रूप में है :—

"38 **उच्चतम न्यायालय की अपील**— भारतीय विधिज्ञ परिषद् की अनुशासन समिति द्वारा धारा 36 या धारा 37 के अधीन (या, यथास्थिति, भारत के महान्यायवादी या सम्बद्ध राज्य के महाधिवक्ता) द्वारा किए गए आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, उस तारीख से आठ दिन के भीतर, जिसको उसे वह आदेश संसूचित किया जाता है, उच्चतम न्यायालय को अपील कर सकेगा और उच्चतम न्यायालय उस पर ऐसा आदेश (जिसके अंतर्गत भारतीय विधिज्ञ परिषद् की अनुशासन समिति द्वारा अधिनिर्णीत दण्ड में परिवर्तन करने का आदेश भी है) पारित कर सकेगा, जैसा वह ठीक समझे :

परन्तु भारतीय विधिज्ञ परिषद् की अनुशासन समिति का कोई भी आदेश, व्यथित व्यक्ति को सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना उच्चतम न्यायालय द्वारा इस प्रकार परिवर्तित नहीं किया जाएगा जिससे कि उस व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।"

इसी प्रकार से लोक प्रतिनिधि अधिनियम, 1951 के अधीन भी अपील का अधिकार निम्नलिखित रूप में दिया गया है :—

"116क. **उच्चतम न्यायालय में अपीलें**—(1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी किसी उच्च न्यायालय द्वारा धारा 98 या धारा 99 के अधीन किए गए हर आदेश से किसी भी प्रश्न पर (चाहे वह विधि का हो या तथ्य का) अपील उच्चतम न्यायालय में होगी।

(2) इस अध्याय के अधीन हर अपील उच्च न्यायालय के धारा 98 या धारा 99 के अधीन के आदेश की तारीख से तीस दिन की कालावधि के भीतर की जाएगी :

परन्तु यदि उच्चतम न्यायालय का समाधान हो जाता है कि ऐसी कालावधि के भीतर अपील प्रस्तुत न करने के लिए अपीलार्थी के पास पर्याप्त हेतुक था तो वह तीस दिन की उक्त कालावधि के अवसान के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा।"

इसी प्रकार से, एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम, 1969 की धारा 55 के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय में अपील करने के अधिकार की गारंटी निम्नलिखित रूप में दी गई है :—

"55. **अपीलें**—कोई भी व्यक्ति जो, यथास्थिति, धारा 2क के खंड (क), खंड (ख) या खंड (ग) में निर्दिष्ट किसी प्रश्न पर किसी विनिश्च या अध्याय 3 या अध्याय 4 के अधीन केन्द्रीय सरकार या धारा 12क या धारा 13 या धारा 36घ या धारा 37 के अधीन आयोग द्वारा बनाए गए, किसी आदेश से व्यथित है, आदेश की तारीख से साठ दिन के भीतर सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) धारा 100 में विनिर्दिष्ट आधारों में से एक या अधिक पर उच्चतम न्यायालय को अपील कर सकेगा।"

यदि ऐसे मामलों में उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार दिया गया है तो प्रश्न उठता है कि जहां मृत्युदण्ड के और अधिक गंभीर परिणाम हैं और ऐसा दण्ड किसी अन्य दण्ड की अपेक्षा विभिन्न स्वरूप का है तथा अपरिवर्तनीय है और किसी भूल को सुधारा नहीं जा सकता है वहां उच्च न्यायालय द्वारा अधिरोपित मृत्यु दण्ड के विरुद्ध अपील करने के अधिकार को क्यों मंजूर नहीं किया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त **वचन सिंह** के मामले में (पूर्व-उल्लिखित) न्यायाधिपति भगवती का यह मंतव्य पूर्ण रूप से सटीक है कि ऐसे प्रत्येक मामले में जहां मृत्यु दण्डादेश की पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की जाती है, उच्चतम न्यायालय द्वारा सभी न्यायाधीशों द्वारा सुनवाई करके मृत्यु के दण्डादेश का स्वतः पुनरीक्षण किया जाए और मृत्यु दण्डादेश की उच्चतम न्यायालय द्वारा

तब तक पुष्टि या अधिरोपण नहीं किया जाए जब तक उस न्यायालय के समक्ष न्यायाधीशों द्वारा सर्वसम्मति से उसका अनुमोदन नहीं कर दिया जाता। तदनुसार, परामर्श पत्र में एक विनिर्दिष्ट प्रश्न रखा गया था कि क्या उन मामलों का विनिश्चिय, जिनमें मृत्युदण्ड दिया गया हो, उच्चतम न्यायालय के कम से कम पांच न्यायाधीशों द्वारा किया जाना चाहिए या नहीं और इस प्रश्न पर सभी संबंधित के विचार आमंत्रित किए गए थे। इसके लिए उच्चतम न्यायालय नियमों में संशोधन आवश्यक होगा।

ऐसे मामले भी हो सकते हैं जिनमें उच्च न्यायालय ने मुक्ति का आदेश दिया हो या किसी कम अवधि की या आजीवन अवधि की सजा दी हो और जिनके विरुद्ध राज्य उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकता है। **ई०के० चन्द्रसेनन** बनाम **केरल राज्य,** ए आई आर 1995 एस सी 1066 में, उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि वह स्वतः भी सजा को मृत्युदण्ड के रूप में बढ़ा सकता है। अतः ऐसी स्थितियों से निबटने के लिए भी उपयुक्त उपबंध करने की आवश्यकता है जहां उच्चतम न्यायालय समझता है कि रिहाई गलत है और अभियुक्त को दण्डादिष्ट किया जाना चाहिए और मृत्युदण्ड दिया जाना चाहिए अथवा दण्ड की अवधि अथवा आजीवन दण्ड को बढ़ा कर मृत्युदण्ड दिया जाना चाहिए। ऐसी स्थितियों में उच्चतम न्यायालय यह निर्देश दे सकता है कि उस मामले को भारत के माननीय मुख्य न्यायाधिपति के समक्ष इस आदेश के लिए रखा जाए कि उस मामले की सुनवाई कम से कम पांच न्यायाधीशों की पीठ द्वारा की जाए। इसके लिए भी उच्चतम न्यायालय के नियमों में संशोधन अपेक्षित है।

अध्याय 7

सेमीनार की कार्यवाहियां और परामर्श पत्र पर जन साधारण के प्रत्युत्तर

भारत के विधि आयोग ने 9 अगस्त 2003 को अपने परामर्श पत्र पर (जिसे डा० एन०एम० घटाटे ने तैयार किया था), जिसका विषय "मृत्युदण्ड के निष्पादन का ढंग और आनुषंगिक विषय" था, आई आई पी ए, दिल्ली में एक सेमीनार की थी। इसका उद्‌घाटन विधि तथा न्याय संघ मंत्री श्री अरुण जेटली ने किया था। मंत्री महोदय ने मृत्युदण्ड के निष्पादन के ढंग के संबंध में, बदले हुए समय, आवश्यकताओं और तकनीकों की पृष्ठभूमि में, विचार विमर्श करने पर बल दिया। उन्होंने उन पुराने कानूनों में परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया जो अब सुसंगत नहीं हैं। उन्होंने मृत्युदण्ड के निष्पादन के वर्तमान फांसी लगाने के ढंग को बदलकर अधिक मानवीय ढंग अपनाने की बात कही। इसके अतिरिक्त उन्होंने कहा कि मृत्युदण्ड को समाप्त करने की बहस धीमी होती जा रही है क्योंकि "हम अंतरसीमा आतंकवाद झेल रहे हैं"। सिद्धदोष व्यक्ति को फांसी देकर मृत्यु में समय लगता है और यह एक कष्टप्रद प्रक्रिया है तथा वर्जनीय हो गई है। उन्होंने इस ओर इशारा किया कि आयोग द्वारा सुझाए गए, अर्थात् ऐसे शिष्ट ढंग जिनमें बिजली की कुर्सी से या प्राणांतक इंजेक्शन से या शूट करके तुरंत मृत्यु हो जाती है, विचार करने योग्य हैं। उन्होंने यह बात भी कही कि "दण्डादिष्ट बंदी को फांसी लगाना वर्जनीय होता जा रहा है तथा और ढंग के अन्य विकल्प, जो बेहतर हैं, उन पर बहस होनी चाहिए"। उन्होंने आश्वासन दिया कि वह बहस के परिणाम प्राप्त होने के पश्चात् इस विषय पर शीघ्र विचार करेंगे।

उद्‌घाटन के पश्चात् विधि आयोग के सदस्य डा० एन०एम० घटाटे ने एक तर्कपूर्ण प्रस्तुति की जिसमें परामर्श पत्र का सारांश था और प्रश्नावली के माध्यम से संग्रहीत आंकड़ों का विश्लेषण भी तत्पश्चात् प्रस्तुत किया। उच्च न्यायालयों और अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों, मानवाधिकार के समर्थकों, तीनों सेवाओं के महान्यायवादी न्यायाधीशों, सी०बी०आई०, जनसाधारण आदि से जो प्रत्युत्तर प्राप्त हुए थे उनका संक्षिप्त विवरण आगे दिया जा रहा है। प्रत्युत्तरों का विश्लेषण, जैसा कि सेमीनार में किया गया था, एक ग्राफ प्रस्तुति के रूप में आगे दिया जा रहा है :—

मृत्युदण्ड के निष्पादन के ढंग के बारे में परामर्श

विषय पर

प्रस्तुति

डा० एन० एम० घटाटे
सदस्य, विधि आयोग
भारत का विधि आयोग

प्रश्नावली के माध्यम से संग्रहीत आंकड़ों का विश्लेषण

क्या आप दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 354(5) में, जिसमें निम्नलिखित उपबंध हैं, संशोधन चाहते हैं

"जब किसी व्यक्ति को मृत्युदण्डादेश दिया जाता है तो वह दण्डादेश यह निर्देश देगा कि उसे गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाया जाए जब तक उसकी मृत्यु न हो जाए"

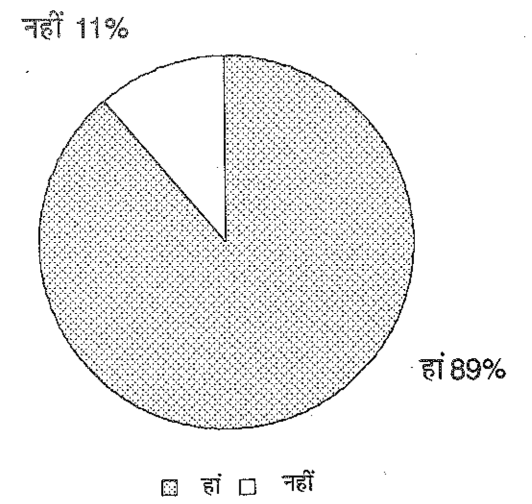

यदि आप फांसी के पक्ष में हैं तो क्या आप फांसी को, निष्पादन के एक ढंग के रूप में, जनसाधारण के समक्ष फांसी लगाने या प्राइवेट में फांसी लगाने को अधिमानतः देंगे

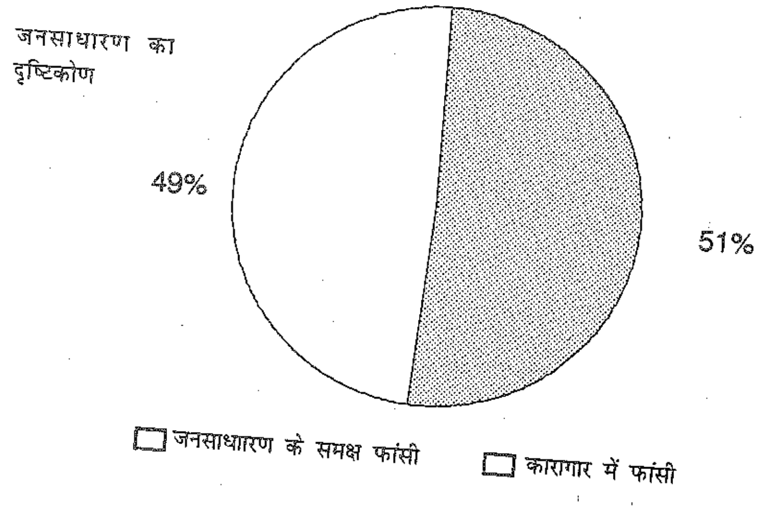

यदि आप फांसी द्वारा मृत्यु को क्रूर समझते हैं तो मृत्युदण्ड के निष्पादन के विकल्प के रूप में आप कौन से ढंग का सुझाव देते हैं ?

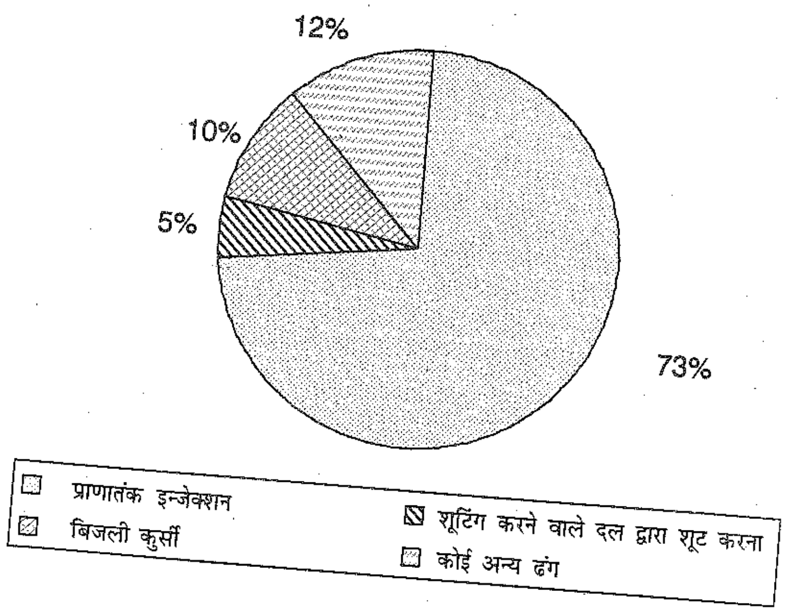

दण्ड निष्पादन के ढंग का चयन क्या न्यायालय के विवेक पर छोड़ा जाना चाहिए ?

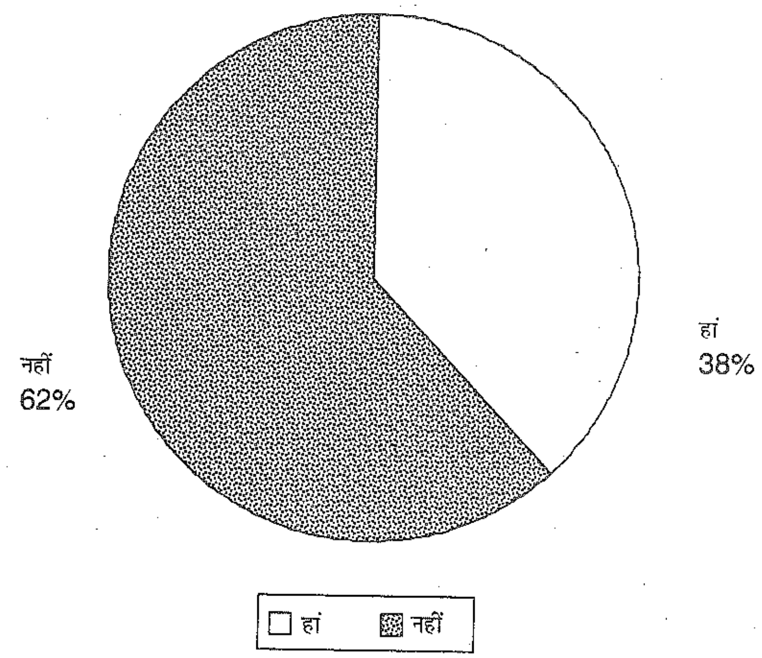

क्या दण्ड निष्पादन के ढंग का चयन सिद्धदोष व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए ?

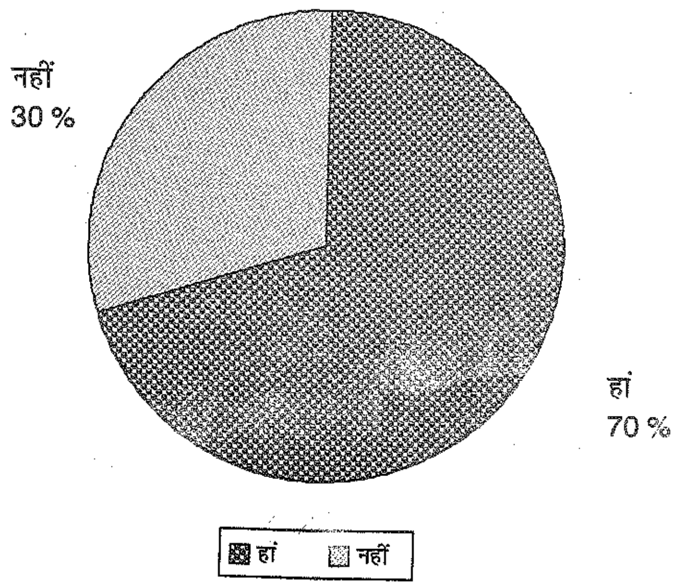

क्या उच्चतम न्यायालय में अपील का अधिकार दिया जाना चाहिए ?

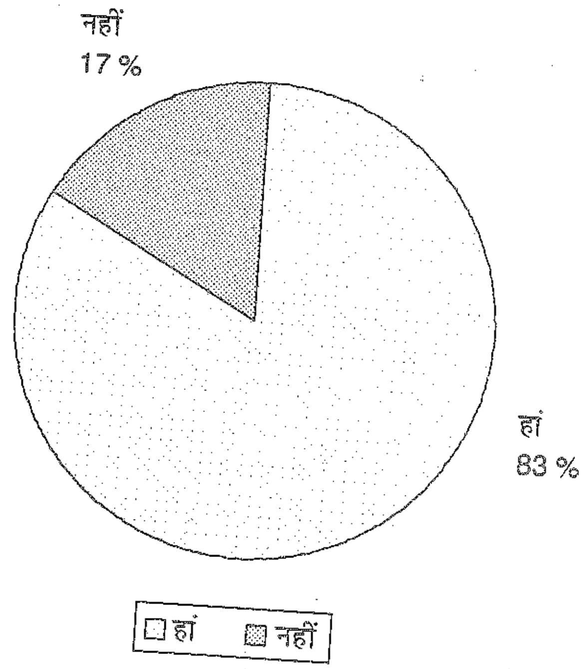

क्या मृत्यु के दण्डादेश का निर्णय उच्चतम न्यायालय की 5 न्यायाधीशों की पीठ द्वारा किया जाना चाहिए ?

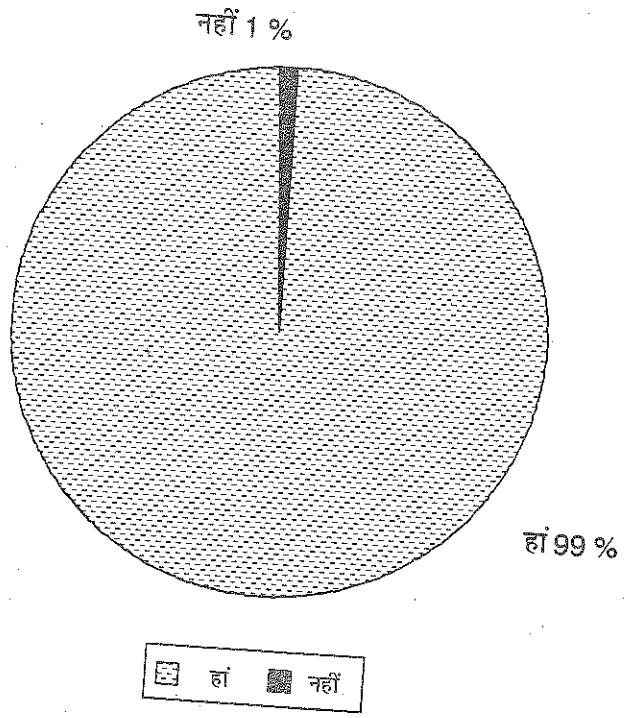

मृत्यु दण्डादेश के मामलों में सुनवाई में उच्चतम न्यायालय की पीठ में मतदान का प्रतिशत कितना होना चाहिए ?

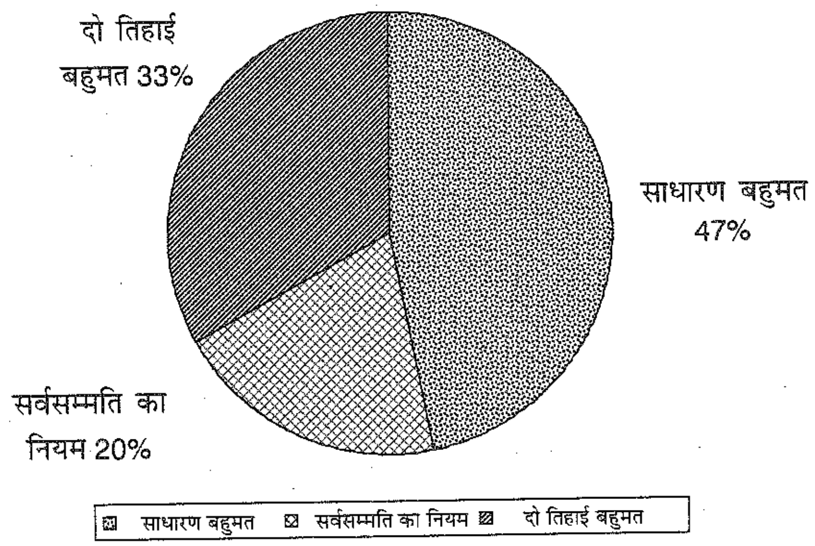

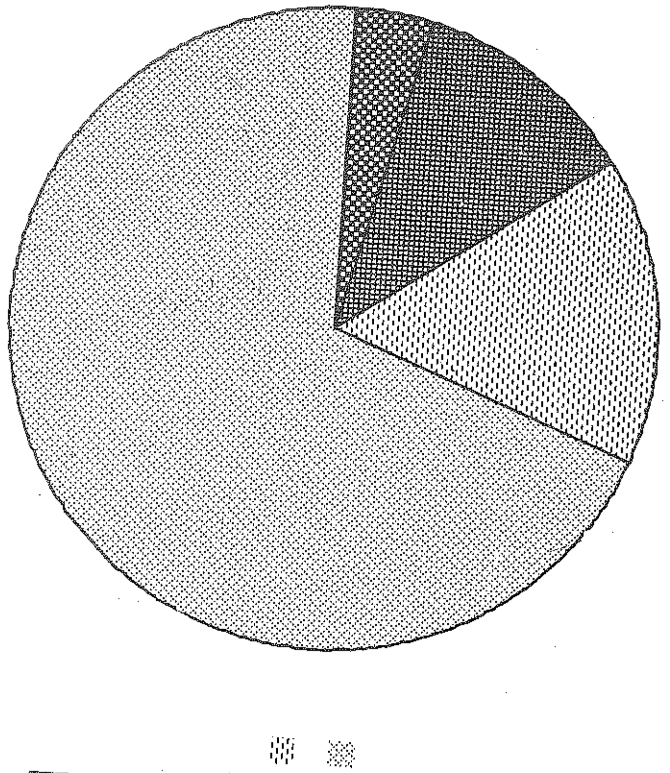

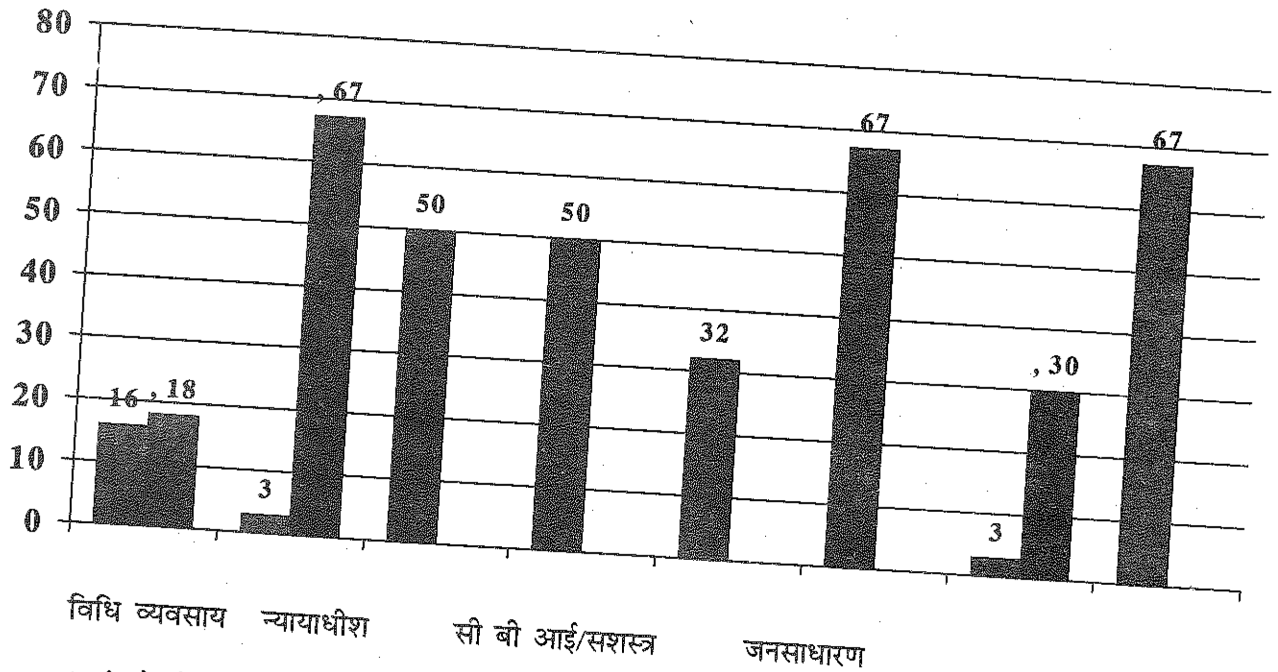

प्रश्नावली में भाग लेने वालों का वर्गानुसार प्रतिशत

*आंकडे केवल 9-8-2003 तक प्राप्त प्रत्युतरों पर आधारित हैं ।

न्यायाधीशों के प्रत्युत्तर

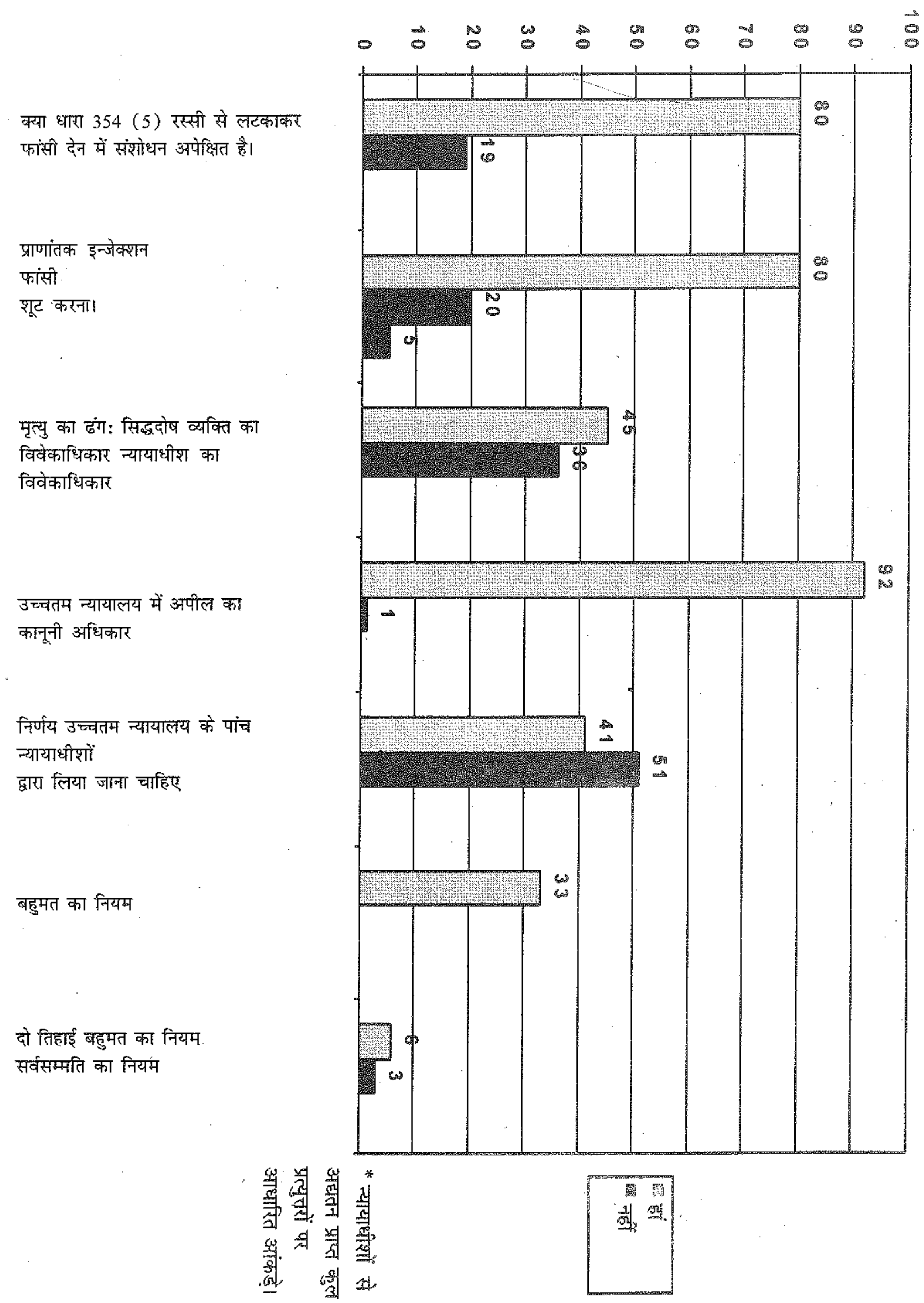

* न्यायाधीशों से अद्यतन प्राप्त कुल प्रत्युत्तरों पर आधारित आंकड़े।

प्रत्युत्तर और टिप्पणियां :

(क) न्यायाधीशों के प्रत्युत्तरों का विश्लेषण :—

विधि आयोग ने विभिन्न उच्च न्यायालयों और अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों से आयोग द्वारा जारी किए गए परामर्श पत्र पर प्रत्युत्तर प्राप्त किए थे। उनके टिप्पणों का विश्लेषण निम्नलिखित प्रकार से है :—

(1) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 354(5) में उपबंध है कि जब किसी व्यक्ति को मृत्यु का दण्डादेश दिया जाए तो उसे गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाया जाए जब तक कि उसकी मृत्यु न हो जाए। इन प्रश्न पर कि क्या द.प्र.सं. की धारा 354(5) में मृत्यु दण्ड के निष्पादन के किसी अन्य ढंग का उपबंध करने के लिए संशोधन अपेक्षित है, 80% न्यायाधीशों ने इस धारा में संशोधन करने के पक्ष में प्रत्युत्तर दिए हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि उनके विचार में मृत्युदण्ड के निष्पादन के वर्तमान ढंग को बदला जाना चाहिए। लगभग 19% न्यायाधीश ही मृत्यु के निष्पादन के वर्तमान ढ़ग से संतुष्ट हैं। धारा 354(5) का संशोधन करने के पक्ष में जो 80% न्यायाधीश हैं उन सभी ने यह सुझाव दिया है कि मृत्यु दण्ड के निष्पादन का अन्य ढंग प्राणातंक इन्जेक्शन का प्रयोग होना चाहिए। तथापि 5% न्यायाधीशों ने सुझाव दिया है कि प्राणांतक इन्जेक्शन के अतिरिक्त 'शूट करना' को भी मृत्युदण्ड के निष्पादन के एक वैकल्पिक ढंग के रूप में विहित किया जा सकता है।

(2) यदि मृत्युदण्ड के निष्पादन के किसी अन्य वैकल्पिक ढंग का उपबंध किया जाता है तो यह प्रश्न उठता है कि क्या मृत्युदण्ड को निष्पादन के ढंग के चयन का विवेकाधिकार न्यायाधीश को दिया जाना चाहिए अथवा सिद्धदोष को। 45% न्यायाधीशों ने यह राय दी है कि मृत्युदण्ड के निष्पादन के ढंग के चयन या विवेकाधिकार सिद्धदोष को दिया जाना चाहिए। 36% न्यायाधीशों का मत है कि यह विवेकाधिकार न्यायाधीशों को दिया जाना चाहिए।

(3) जहां तक उच्चतम न्यायालय में अपील करने के अधिकार का संबंध है, इस समय, विधि में ऐसा कोई उपबंध नहीं है जिसके अंतर्गत वह व्यक्ति जिसे मृत्यु का दण्डादेश दिया गया है और जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय ने कर दी है, ऐसे मृत्यु दण्डादेश के विरुद्ध उच्चतम नयायालय में अधिकार पूर्वक अपील कर सकता है 92% न्यायाधीशों ने इस विचार का समर्थन किया है कि उन मामलों में जहां उच्च न्यायालय ने मृत्यु के दण्डादेश की पुष्टि कर दी हो, उच्चतम न्यायालय में उसके विरुद्ध अपील करने का कानूनी अधिकार होना चाहिए। अधीनस्थ न्यायालय के केवल एक न्यायाधीश ने उच्चतम न्यायालय में अपील करने के ऐसे अधिकार के लिए उपबंध करने का समर्थन नहीं किया है।

(4) प्रश्न यह है कि क्या उच्चतम न्यायालय में मृत्यु दण्डादेश से संबंधित मामलों की सुनवाई और निर्णय करने के लिए कम से कम पांच न्यायाधीशों की पीठ होनी चाहिए? न्यायाधीशों में से 51% ने इसका नकारात्मक उत्तर दिया है और 41% न्यायाधीशों का मत यह है कि मृत्यु दण्डादेशों से संबंधित मामलों की सुनवाई और निर्णय कम से कम पांच न्यायाधीशों की पीठ द्वारा किया जाना चाहिए। इन न्यायाधीशों में से 33% के मतानुसार बहुमत के नियम को लागू किया जाना चाहिए। 6% न्यायाधीश दो तिहाई का नियम लागू करने के पक्ष में हैं। 3% न्यायाधीशों ने सुझाव दिया है कि सर्वसम्मति का नियम लागू किया जाना चाहिए।

(ख) न्यायाधीशों से भिन्न व्यक्तियों के प्रत्युत्तरों का विश्लेषण :—

आयोग को परामर्श पत्र पर जनसाधारण से, विधि व्यवसाय के व्यक्तियों से, डाक्टरों, सशस्त्र बलों के अधिकारियों और सी.बी.आई. के अधिकारियों आदि से भी बड़ी संख्या में प्रत्युत्तर प्राप्त हुए हैं। उनकी टिप्पणियों का विश्लेषण निम्नलिखित प्रकार से है :—

(1) ज्ञात होता है कि 89% व्यक्ति दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 354(5) में संशोधन करके मृत्यु दण्ड के निष्पादन के लिए अन्य ढंगों का उपबंध करने के पक्ष में हैं। तथापि 11% व्यक्तियों ने अपने प्रत्युत्तरों ने द.प्र.सं. की

धार 354(5) में संशोधन करने का सुझाव नहीं दिया है। मृत्युदण्ड के निष्पादन के अन्य ढंगों के लिए उपबंध करने के पक्ष में जो व्यक्ति हैं उनमें से 73% ने मृत्युदण्ड के निष्पादन के वैकल्पिक ढंग के रूप में प्राणांतक इन्जेक्शन का प्रयोग करने को बेहतर माना है। जबकि 10 प्रतिशत बिजली की कुर्सी के प्रयोग को और 5 प्रतिशत शूटिंग दल द्वारा शूट करने की मृत्युदण्ड के निष्पादन को वैकल्पिक रूप से बेहतर मानते हैं। तथापि, 12 प्रतिशत व्यक्तियों ने मृत्यु दण्ड के निष्पादन के अन्य ढंगों का सुझाव दिया है।

(2) मृत्युदण्ड के निष्पादन के वर्तमान ढंग, अर्थात्, 'तब तक गले से लटका कर फांसी देना जब तक मृत्यु न हो जाए', को चालू रखने के पक्ष में जो व्यक्ति हैं उनमें से 51 प्रतिशत का यह मत है कि फांसी द्वारा मृत्युदण्ड का निष्पादन सार्वजनिक स्थान में किया जाना चाहिए। किन्तु 49 प्रतिशत व्यक्तियों के अनुसार फांसी किसी प्राइवेट स्थान, जैसे, कारागार, में दी जानी चाहिए।

(3) मृत्यु दण्ड के निष्पादन के लिए वैकल्पिक ढंग का उपबंध कराने की दशा में क्या न्यायालय को विवेकाधिकार दिया जाना चाहिए, इस प्रश्न पर 62 प्रतिशत ने नकारात्मक उत्तर दिया है और 38 प्रतिशत ने न्यायालय को विवेकाधिकार देने का समर्थन किया है। इस प्रश्न पर कि क्या मृत्युदण्ड के निष्पादन का ढंग चुनने का विवेकाधिकार सिद्धदोष को दिया जाना चाहिए या नहीं, 70 प्रतिशत ने इसका सकारात्मक उत्तर दिया है। तथापि 30 प्रतिशत सिद्धदोष को ऐसा विवेकाधिकार देने के पक्ष में नहीं है।

(4) 83 प्रतिशत व्यक्तियों ने अपने प्रत्युत्तरों में यह राय दी है कि उन मामलों में उच्चतम न्यायालय में अपील का कानूनी अधिकार होना चाहिए जिनमें विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए मृत्यु दण्डादेश की पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा कर दी जाती है। 17 प्रतिशत ऐसे मामलों में उच्चतम न्यायालय में अपील करने के अधिकार का उपबंध करने के पक्ष में नहीं है।

(5) 99 प्रतिशत व्यक्तियों का यह मत है कि मृत्यु दण्डादेश से संबंधित मामलों की उच्चतम न्यायालय में सुनवाई और निर्णय कम से कम पांच न्यायाधीशों की पीठ द्वारा किया जाना चाहिए। इनमें से 47 प्रतिशत साधारण बहुमत के नियम और 33 प्रतिशत दो तिहाई बहुमत के नियम को लागू करने के पक्ष में है। 20 प्रतिशत सर्वसम्मति के नियम के पक्ष में है।

(ग) टाइम्स ऑफ इण्डिया मतगणना :—

यह उल्लेख किया जा सकता है कि टाइम्स ऑफ इण्डिया ने 27 जुलाई, 2003 को एस.एम.एस. मतगणना के लिए यह प्रश्न पूछा कि ''क्या सार्वजनिक रूप से फांसी अतिघृणित अपराधों के लिए सर्वोत्तम दण्ड है?'' 69% प्रत्युत्तर 'हां' में और 31% 'नहीं' में थे। मृत्युदण्ड के निष्पादन के लिए दयालुतापूर्ण ढंग अपनाने के संबंध में भारत में जनसाधारण की प्रक्रिया विचित्र है।

आयोग को लगता है कि जनसाधारण मृत्युदण्ड के निष्पादन के क्रूरतापूर्ण ढंग के पक्ष में क्यों है? इसका कारण यह है कि सिद्धदोष पाए जाने की दर अत्यन्त कम है और मात्र 6% के लगभग है जबकि भारत में अपराध की दर बढती जा रही है। अन्वेषक और न्यायायिक अभिकरण अपराध करने वाले व्यक्तियों को न्यायालय के समक्ष लाने में समर्थ नहीं हैं। आज जनसाधारण का यह अनुभव है कि उच्च, धनी और शक्तिशाली विलम्ब कराने, गवाहों को तोड़ने और प्रणाली का दुरुपयोग करने में समर्थ हैं और वे बच निकलते हैं। यह उल्लेख भी किया जा सकता है कि सेना, नौ सेना और वायुसेना के महान्यायवादी न्यायाधीशों ने, जिनने प्रत्युत्तर दिया है, सेना, नौसेना और वायुसेना अधिनियमों के संशोधन करके फांसी के स्थान पर प्राणांतक इन्जेक्शन का प्रयोग करने का समर्थन किया है। किन्तु उनका यह मत है कि सेना न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार नहीं होना चाहिए।

उद्घाटन के पश्चात्, विधि आयोग के अध्यक्ष ने, जिन्होंने उक्त सेमीनार की अध्यक्षता की थी, विभिन्न भाग लेने वालों को, जिसमें मुख्य रूप से अधिवक्तागण, वरिष्ठ पुलिस अधिकारी, सरकारी अधिकारी गैर-सरकारी संगठन, सेना, नौसेना और वायुसेना के महान्यायवादी न्यायाधीशों के प्रतिनिधि और जेल अधिकारी सम्मिलित थे, विचार विमर्श आरम्भ किया।

भाग लेने वालों को प्रश्नावली से संबंधित विभिन्न प्रश्नों पर, जैसे, मृत्युदण्ड के निष्पादन के वैकल्पिक ढंग, उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार, ऐसे मामलों की सुनवाई करने के लिए गठित पीठ में न्यायाधीशों की संख्या आदि पर, अपनी टिप्पणियां प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया गया।

श्री सुशील कुमार (वरिष्ठ अधिवक्ता, उच्च न्यायालय) का कथन था कि द.प्र.सं. की धारा 354(5) का संशोधन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने फांसी लगाकर मृत्युदण्ड के निष्पादन का समर्थन किया। अपील के अधिकार के प्रश्न पर उनका मत था कि मृत्यु दण्डादेश का प्रत्येक मामला उच्चतम न्यायालय के सामने, अधिकार के रूप में, जाना चाहिए। मृत्यु दण्डादेश के मामले का निर्णय करने वाली पीठ के गठन के प्रश्न पर उनका सुझाव यह था कि यदि कम से कम 3 न्यायाधीशों की पीठ ऐसे मामले की सुनवाई करती है तो यह पर्याप्त होगा और ऐसे मामलों में उन्होंने सर्वसम्मति के नियम के पक्ष में राय दी। तिहाड़ कारागार के महानिदेशक श्री अजय अग्रवाल ने भी फांसी द्वारा मृत्युदण्ड के निष्पादन का समर्थन किया और उनका यह मत था कि पांच न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दण्ड का निर्णय किया जाना चाहिए और बहुमत से निर्णय किया जाना चाहिए और बहुमत का निर्णय मान्य होना चाहिए। दिल्ली पुलिस के संयुक्त आयुक्त श्री यू.एन.बी. राव ने यह मत प्रकट किया कि मृत्युदण्ड का निष्पादन सार्वजनिक रूप से फांसी होनी चाहिए क्योंकि उसका अधिक प्रभाव पड़ेगा। उन्होंने यह भी कहा कि ऐसे मामलों में पीठ में बहुमत का नियम चलना चाहिए। अधिवक्ता श्री के.पी.एस. राजन ने प्राणांतक इन्जेक्शन की अपेक्षा फांसी को बेहतर ढंग माना और दण्ड के ढंग के चयन के बारे में उन्होंने कहा कि ऐसे चयन का अधिकार न्यायाधीश को या अभियुक्त को दिया जा सकता है, अपील का अधिकार होना चाहिए तथा मृत्यु दण्डादेश के मामले का निर्णय करने के लिए पांच न्यायाधीशों की पीठ होनी चाहिए।

नेशनल लॉ स्कूल ऑफ इण्डिया, बंगलूर विश्वविद्यालय की छात्रा श्रीमती प्रतिभा रामास्वामी ने फांसी द्वारा मृत्युदण्ड को बेहतर बताया। उनका यह मत था कि दण्ड निष्पादन के और अधिक ढंग भी हो सकते हैं। अपील का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए और मृत्युदण्ड के मामलों का निर्णय कम से कम पांच न्यायाधीशों की पीठ द्वारा किया जाना चाहिए। श्री एस.के.शर्मा (अभियोजन निदेशक, सी.बी.आई.) ने मृत्युदण्ड को चालू रखने का समर्थन किया। दण्ड का चयन सिद्धदोष पर छोड़ा जाना चाहिए। मामले की सुनवाई 3 न्यायाधीशों की पीठ द्वारा की जानी चाहिए और बहुमत की राय से निर्णय होना चाहिए तथा उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार होना चाहिए। कामनवेल्थ ह्यूमेन राइट के प्रतिनिधि श्री बाल चन्द्रा ने कहा कि मृत्युदण्ड समाप्त किया जाना चाहिए। अधिवक्ता श्री जेम्स ने सुझाव दिया कि दाण्डिक न्यायप्रणाली में सुधार की आवश्यकता है, जैसे, कि विचारण, अन्वेषण, अभियोजन आदि की प्रणाली में सुधार। डा. डी.पी. शर्मा, निदेशक, आई.आर.ए.पी. ने कारागारों में प्राइवेट रूप से फांसी देने की अपेक्षा सार्वजनिक रूप से फांसी को बेहतर बताया। उनके अनुसार मृत्युदण्ड का निर्णय करने के लिए एकल न्यायाधीश पीठ पर्याप्त है और साधारण बहुमत का नियम बेहतर है।

सेना, नौसेना और वायु सेना के महान्यायवादी न्यायाधीश ने विधि आयोग को पत्र लिखकर सुझाव दिया कि सेना—न्यायालय द्वारा मृत्युदण्ड देने के आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील का अधिकार नहीं होना चाहिए। विधि आयोग, तथापि, उपरोक्त सुझाव को स्वीकार करने में असमर्थ है। प्रश्नावली पर आयोग को ऐसे प्रत्युत्तर भारत से और विदेशों से प्राप्त हुए थे। अनेक व्यक्तियों की यह राय थी कि यद्यपि मृत्युदण्ड को अनेक देशों में समाप्त कर दिया है किन्तु भारत की स्थितियों में, वह देश जो आतंकवाद तथा अपराधों में वृद्धि से प्रभावित है, मृत्युदण्ड समाप्त नहीं किया जाना चाहिए।

अध्याय 8

सिफारिशें

मृत्यु दण्ड के निष्पादन के ढंग के बारे में पूर्वतर अध्यायों में किए गए अध्ययन तथा विधि आयोग के परामर्श पत्र और प्रश्नावली पर उसे प्राप्त हुए प्रत्युत्तरों के प्रकाश में विधि आयोग निम्नलिखित सिफारिशें करता है :—

1. 95 प्रतिशत से अधिक व्यक्तियों ने अपने प्रत्युत्तरों में कहा है कि मृत्युदण्ड के निष्पादन के अन्य ढंगों के लिए उपबंध करने के वास्ते द. प्र. सं. 1973 की धारा 354(5) में संशोधन अपेक्षित है और लगभग 76 प्रतिशत व्यक्ति मृत्युदण्ड के निष्पादन के ढंग के लिए प्राणांतक इन्जेक्शन का प्रयोग करने के पक्ष में है।

आयोग का यह मत है कि प्राणांतक इन्जेक्शन देना मृत्युदण्ड के निष्पादन के लिए वैकल्पिक ढंग के रूप में उपबंधित किया जाना चाहिए और द.प्र. सं., 1973 की धारा 354(5) में जैसा उपबंधित है, अर्थात्, 'गर्दन से लटकाकर तब तक फांसी देना जब तक मृत्यु न हो जाए' को भी मृत्युदण्ड के निष्पादन के ढंग के रूप में बनाए रखना चाहिए,आज की स्थिति में मृत्युदण्ड के निष्पादन के वर्तमान ढंग को, अर्थात्, गर्दन से लटकाकर तब तक फांसी जब तक मृत्यु न हो जाए पूर्णतय समाप्त करना उचित नहीं होगा। हमारा यह मत है कि निष्पादन के वर्तमान ढंग को जारी रखा जाए और एक अतिरिक्त उपबंध जोड़ा जाए जो प्राणांतक इन्जेक्शन द्वारा मृत्युदण्ड के निष्पादन के वैकल्पिक ढंग की अनुमति दे।

अत: आयोग सिफारिश करता है कि :

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 354(5) में, जिसमें उपबंध है कि ''जब किसी व्यक्ति को मृत्यु दण्डादेश दिया जाता है तो वह दण्डादेश यह निर्देश देगा कि उसे गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाया जाए जब तक उसकी मृत्यु न हो जाए मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के एक वैकल्पिक ढंग के रूप में उपबंध करके संशोधन करने की आवश्यकता है कि ''तब तक प्राणांतक इन्जेक्शन देना जब तक अभियुक्त की मृत्यु न हो जाए''।

2. मृत्यु दण्ड के निष्पादन के ढंग का चयन करने का विवेकाधिकार न्यायालय को दिया जाए या सिद्धदोष को, इस प्रश्न पर प्रत्युत्तरों में बहुमत का यह सुझाव है कि यह विवेकाधिकार सिद्धदोष को दिया जाना चाहिए न कि न्यायालय को।

आयोग का यह मत है कि यह विवेकाधिकार न्यायालय को दिया जाना चाहिए जो विभिन्न सुसंगत कारणों पर विचार करने के पश्चात् मृत्युदण्ड के निष्पादन के ढंग का विनिश्चय कर सकता है।

आयोग की यह राय भी है कि मृत्युदण्ड के निष्पादन के ढंग के प्रश्न पर सिद्धदोष को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए क्योंकि अब एक वैकल्पिक ढंग की सिफारिश भी की जा रही है। न्यायालय मृत्युदण्ड के निष्पादन के ढंग की बाबत अभियुक्त को सुनने के पश्चात् उचित आदेश पारित करेगा। इस संबंध में, द.प्र.सं. 1973 की धारा 354 में, जो विचारण न्यायालय तथा अन्य अपीली न्यायालयों को भी लागू होती है, एक उपयुक्त उपबंध अंत:स्थापित करने की आवश्यकता है जिसमें सिद्धदोष को मृत्युदण्ड के निष्पादन के ढंग के विषय में सुनवाई का अवसर प्रदान करने के लिए उपबंध किया जाए।

अतः आयोग सिफारिश करता है कि :

मृत्युदण्ड के निष्पादन के ढंग के बारे में अभियुक्त को सुनवाई का अवसर देने के उद्देश्य से दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 354(5) की उपधारा (5) में निम्नलिखित रूप से एक परन्तुक अंतःस्थापित करके संशोधन करने की आवश्यकता है :—

''परन्तु न्यायालय मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के ढंग के बारे में अंतिम आदेश पारित करने के पूर्व अभियुक्त को उस प्रश्न पर सुनवाई का अवसर देगा।''

3. वायु सेना अधिनियम, 1950 की धारा 166, वायु सेना अधिनियम, 1950 की धारा 163 और नौ सेना अधिनियम, 1957 की धारा 147 के अनुसार मृत्यु दण्डादेश का निष्पादन फांसी लगाकर तब तक लटका कर जब तक मृत्यु न हो जाए अथवा शूट करके मृत्यु द्वारा किया जा सकता है।

विधि आयोग का यह मत है कि इन नियमों में, 'शूट करके मृत्यु' द्वारा मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन को जारी रखा जा सकता है और इन अधिनियमों में विहित गर्दन में फांसी लगाकर मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के दूसरे ढंग के स्थान पर 'प्राणांतक इन्जेक्शन देकर' शब्दों को प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए।

अतः आयोग सिफारिश करता है कि—

''गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाया जाए जब तक उसकी मृत्यु न हो जाए'' शब्दों के स्थान पर सेना अधिनियम, 1950 की धारा 166, वायु सेना अधिनियम, 1950 की धारा 163 और नौसेना अधिनियम, 1957 की धारा 147 में ''तब तक प्राणांततक इन्जेक्शन दिया जाए जब तक अभियुक्त की मृत्यु न हो जाए'' शब्द प्रतिस्थापित किए जाने चाहिए।

4. लगभग 88 प्रतिशत व्यक्तियों ने अपने प्रत्युत्तरों में सुझाव दिया है कि उन मामलों में जहां उच्च न्यायालय मृत्यु दण्डादेश देता है या सेशन न्यायालय द्वारा पारित दण्डादेश की पुष्टि करता है, उच्चतम न्यायालय में, अधिकार के रूप में, अपील होनी चाहिए।

अतः आयोग सिफरिश करता है कि :—

सेशन न्यायालय द्वारा किए गए मृत्यु के दण्डादेश की पुष्टि करने वाले अथवा उच्च न्यायालय की दण्ड में वृद्धि करने के लिए प्राप्त शक्ति का प्रयोग करते हुए मृत्यु दण्डादेश देने के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने का कानूनी अधिकार होना चाहिए।

इस विषय में उच्चतम न्यायालय (दाण्डिक अपीली अधिकारिता विस्तारण) अधिनियम, 1970 की धारा 2 में खण्ड (ग) के रूप में निम्नलिखित जोड़ कर उपयुक्त संशोधन करने की आवश्यकता है :—

''(ग) उच्च न्यायालय सेशन न्यायालय द्वारा दिए गए मृत्यु के दण्डादेश की पुष्टि करता है, अथवा दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1974 की धारा 386 (ग) (iii) या धारा 397 या धारा 401 के अधीन दण्ड में वृद्धि करने की शक्ति का प्रयोग करते हुए मृत्यु का दण्डादेश देता है।''

5. सेना, नौसेना और वायु सेना के जज एडवोकेट जनरल ने विधि आयोग को पत्र लिखे हैं जिनमें सुझाव दिया है कि सेना न्यायालय द्वारा दिए गए मृत्यु दण्डादेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार नहीं होना चाहिए।

तथापि, विधि आयोग उपरोक्त सुझाव को स्वीकार करने में असमर्थ है।

अतः आयोग सिफारिश करता है कि—

''सेना अधिनियम, 1950, वायु सेना अधिनियम, 1950 और नौसेना अधिनियम, 1957 के अधीन, वहां जहां सेना न्यायालय ने मृत्यु का दण्डादेश दिया हो और केन्द्रीय सरकार अथवा उपयुक्त प्राधिकारी ने उसकी पुष्टि कर दी हो, उच्चतम न्यायालय में अपील करने के अधिकार के लिए उपबंध करने के विषय में, जहां भी अपेक्षित हो, उपरोक्त अधिनियमों में इस आशय के उचित संशोधन किए जाएं कि मृत्यु दण्डादेश की केन्द्रीय सरकार अथवा उपर्युक्त प्राधिकारी द्वारा पुष्टि करने के आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार होगा।''

6. (क) अधिकांश व्यक्तियों ने यह मत प्रकट किया है कि उन मामलों की, जहां मृत्यु का दण्डादेश दिया गया हो, उच्चतम न्यायालय में सुनवाई और निर्णय कम से कम पांच न्यायाधीशों की पीठ द्वारा की जानी चाहिए। विधि आयोग का भी यही मत है।

अतः आयोग यह सिफारिश करता है कि :—

उन मामलों की, जिनमें मृत्यु दण्डादेश दिया गया है, सुनवाई करने वाली उच्चतम न्यायालय की पीठ में कम से कम पांच न्यायाधीश होने चाहिएं। उच्चतम न्यायालय नियमों में तदनुसार संशोधन किया जा सकता है।

(ख) यदि किसी मामले की सुनवाई करते समय उच्चतम न्यायालय को लग सकता है कि रिहाई गलत है और अभियुक्त की दोषसिद्धि होनी चाहिए और उसे दण्ड दिया जाना चाहिए अथवा यह सोचता है कि किसी अवधि या आजीवन कारावास की अवधि में वृद्धि करके मृत्युदण्ड दिया जाना चाहिए; तो ऐसी स्थितियों में, न्यायालय की पीठ को, जिसने मामले की सुनवाई की है, यह निर्देश देना चाहिए कि उस मामले को कम से कम पांच न्यायाधीशों की पीठ द्वारा सुनवाई करने के वास्ते भारत के माननीय मुख्य न्यायाधिपति के समक्ष रखा जाए।

तदनुसार उच्चतम न्यायालय नियमों में इस विषय में उपबंध करना होगा और हम तदनुसार इसकी सिफारिश करते हैं।

इस रिपोर्ट को तैयार करने में विधि आयोग के अंशकालीन सदस्य डा. एस. मुरलीधर द्वारा प्रदान किए गए व्यापक सहयोग को हम स्वीकार करते हैं। हम श्री गिरीश नायक थिगले, जो नेशनल लॉ स्कूल आफ इण्डिया, बंगलूर विश्व विद्यालय के पांचवीं वर्ष के छात्र हैं ''मृत्युदण्ड के निष्पादन का ढंग तथा आनुषंगिक विषय'' की बाबत परामर्श पत्र तैयार करने में दिए गए सहयोग की भी प्रशंसा करते हैं।

हमारी सिफारिशें तदनुसार हैं।

ह०

(न्या एम जगन्नाथ राव)

अध्यक्ष

ह०

(डा. एन.एम. घटाटे)

उपाध्यक्ष

ह०

(टी.के. विश्वनाथन)

सदस्य-सचिव

दिनांक 17-10-2003

उपाबंध-1

भारत का विधि आयोग
मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन का ढंग
और आनुषंगिक विषय (प्रश्नावली सहित)
अप्रैल, 2003
के बारे में
परामर्श पत्र का सारांश

अविस्मरणीय समय से ही मृत्युदण्ड शास्ति का एक ढंग रहा है किन्तु सभ्यता के विकास के साथ-साथ मृत्युदण्ड में अनेक मानवीय परिवर्तन सामने आये हैं।

मध्य युग में, मृत्युदण्ड के अनेक बर्बर तथा क्रूरता ढंग अपनाए जाते रहे, जैसे :—

(1) सूली पर चढ़ाना जिसमें व्यक्ति को एक क्रास पर कीलों से ठोक दिया जाता था और मरने के लिए छोड़ दिया जाता था;

(2) भट्टी पर जलाना;

(3) मृत्यु होने तक तेल में उबालना;

(4) तीलीदार चक्र के साथ व्यक्ति को बांधकर चक्र तब तक घुमाते रहना जब तक व्यक्ति की मृत्यु न हो जाए;

(5) पहाड़ की चट्टान से फैंकना;

(6) हाथी के पैर के नीचे मस्तक को कुचलना;

(7) पत्थर मार-मार कर मृत्यु—जिसका चलन आज भी मध्य पूर्व के कुछ देशों में है;

(8) गिलोटीन;

(9) दम घोट कर मृत्यु।

मृत्युदण्ड के निष्पादन के इस समय प्रचलित ढंग निम्नलिखित हैं—

(क) गर्दन में फांसी लगा कर मृत्यु;

(ख) शूट करने वाला दस्ता;

(ग) गैस चैम्बर;

(घ) बिजली का करेंट लगा कर मृत्यु;

(ङ) नसों में प्राणांतक इन्जेक्शन लगाना;

भारत में स्थिति

भारत में, 100 वर्ष से अधिक से, मृत्युदण्ड का ढंग एक ही रहा है। दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 368(1) में निम्नलिखित प्रकार से उपबंध हैं :—

"जब किसी व्यक्ति को मृत्युदण्ड का दण्डादेश दिया जाता है तो वह दण्डादेश यह निर्देश देगा कि उसे गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाया जाए जब तक उसकी मृत्यु न हो जाए।

इस उपबंध को द.प्र.सं. 1973 की धारा 354(5) के रूप में बनाए रखा गया है।

पूर्वत्तर अध्ययन :

मृत्युदण्ड के विषय में विधि आयोग की 1968 की 35वीं रिपोर्ट में मृत्युदण्ड के विभिन्न ढंगों पर चर्चा करने के पश्चात् निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला गया है;

"हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अधिकांश लोगों की राय है कि फांसी देने के ढंग को बदलकर कोई अधिक मानवीय और कष्टरहित ढंग अपनाया जाना चाहिए............"

"आम राय यह है कि कोई ऐसा ढंग, जो निश्चित, मानवीय, त्वरित और शिष्ट हो, अपनाया जाना चाहिए और इस राय से किसी को भी विरोध नहीं हो सकता। यह सत्य है कि वास्तव में सबसे अधिक दु:खदाई बात सामने खड़ी मौत की आशंका है। किन्तु समाज पर यह दायित्व है कि ठीक मृत्यु के समय होने वाला कष्ट कम से कम हो.......... **निश्चेतना विज्ञान में प्रगति तथा विभिन्न ढंगों के और अध्ययन से, एवं अन्य देशों से प्राप्त अनुभव से और विद्यमान ढंगों में विकास तथा सुधार से संभवतः भविष्य में इस विवादास्पद विषय पर किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए एक मजबूत आधार मिल जाएगा।"**

उस समय विधि आयोग किसी दृढ़ निश्चय पर पहुंचने में समर्थ नहीं हो पाया था और फांसी को बरकरार रखा गया था।

द रायल कमीशन रिपोर्ट आन कैपीटल पनिशमेंट 1949—53 में मृत्यु के निष्पादन के प्रचलित ढंगों की चर्चा की गई थी और उल्लेख किया गया था कि मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन में तीन शर्तें पूरी होनी चाहिए—(क) वह यथासंभव कम कष्टदायक होना चाहिए; (ख) वह यथासंभव त्वरित होना चाहिए; और (ग) शरीर की विकृति कम से कम होनी चाहिए।

रायल कमीशन ने यह उल्लेख भी किया है कि न्यायिक मृत्यु के प्रश्न पर समय-समय पर और विशेष रूप से निश्चेतना विज्ञान में हो रही प्रगति के परिप्रेक्ष्य में विचार होना चाहिए।

द यूनाइटेड नेशन्स इकॉनोमिक एण्ड सोशल काउंसिल (ई सी ओ एस ओ सी) के संकल्प 1944-50, उपाबद्ध, जनरल असेम्बली संकल्प 29/118, 1984 में यह उपबंध है कि जहां भी मृत्युदण्ड दिया जाए वहां उसे इस प्रकार से क्रियान्वित किया जाए कि **जहां तक संभव हो कम से कम कष्ट पहुंचे।**

भारत के उच्चतम न्यायालय ने दीना बनाम भारत संघ (1983) 4 एस सी सी 845 में उल्लेख किया है कि मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन में निम्नलिखित चार बातें पूरी होनी चाहिए :

(1) फांसी के निष्पादन का कार्य इतना त्वरित और सरल तथा बिना किसी ऐसी बात के होना चाहिए जिससे बंदी की आशंका या भय को अनावश्यक बढ़ावा मिले।

(2) निष्पादन इस प्रकार से होना चाहिए कि तुरंत बेहोशी हो जाए और उसके बाद तुरंत मृत्यु हो जाए।

(3) निष्पादन शिष्ट होना चाहिए।

(4) उसमें किसी प्रकार की शरीरिक दुर्दशा नहीं होनी चाहिए।

उद्देश्य :

इस पत्र पर चर्चा के उद्देश्य ये हैं—(क) मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन का ढंग ; (ख) मृत्यु दण्डादेश पारित करने में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के बीच न्यायिक राय में भिन्नता को दूर करने की प्रक्रिया ; और (ग) मृत्यु दण्डादेश के मामलों में अभियुक्त को उच्चतम न्यायालय में अपील का अधिकार देने का उपबंध करने की आवश्यकता पर विचार।

मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन के वर्तमान ढंगों का तुलनात्मक अध्ययन :

फांसी—गर्दन में फांसी लगा कर मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन का प्रचलित ढंग कुछ देशों में प्रचलित हैं। यदि लटकन (Drop) की लम्बाई सही है, तो उसके परिणामस्वरूप स्पाइनल कोर्ड टूट जाती है और तुरंत तथा लगभग बिना कष्ट के मृत्यु हो जाती है अन्यथा उसके परिणामस्वरूप दम घुटने से कष्टपूर्ण मृत्यु होती है। भारत में मृत्यु के पश्चात् शव परीक्षण का कोई उपबंध नहीं है जैसा कि यू. के. में मृत्युदण्ड समाप्त करने से पूर्व यह सुनिश्चित करने के लिए है कि दोष सिद्ध व्यक्ति की मृत्यु स्पाइनल कोर्ड के टूटने से हुई या दम घुटने से। यू. के. में भी यह पाया गया था कि अधिकांश मामलों में मृत्यु दम घुटने के कारण हुई थी।

प्रक्रिया बहुत लम्बी है—पहले ऐसे व्यक्ति को जिसे फांसी दी जानी है एकान्त में रखा जाता है और ऐसी किसी सामग्री को अपने पास रखने की उसे अनुमति नहीं दी जाती जिसके द्वारा वह स्वयं को मार सके जैसे कि दाड़ी बनाने का सामान, नाड़ा, यहां तक कि भोजन के बर्तन भी मिट्टी के होते हैं। फांसी देने से एक दिन पूर्व उसका वजन लिया जाता है उसके हाथ पैर बांध दिए जाते हैं तथा उसे एक काला हुड (जेल मैनुअल) पहना दिया जाता है। तख्ते को हटाने के पश्चात् शरीर को आधे घंटे तक लटकने रहने दिया जाता है। प्राय: उसकी आंखें और जीभ बाहर निकल आती है और मल मूत्र निकल जाता है। फांसी की प्रक्रिया में लगभग 40 मिनट लगते हैं। भारत में कुशल फांसी लगाने वालों की भी कमी है और जेल मैनुअल में यह उपबंध है कि जेलर, जिसे कोई वैज्ञानिक ज्ञान नहीं होता है, फांसी लगाने वाले का मार्ग निर्देशन करे। युनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमरीका में फांसी को अमानवीय और अपमानजनक मानकर समाप्त कर दिया गया है।

बिजली करेंट

बिजली करेंट देने की अनौखी पद्धति में बिजली की कुर्सी का प्रयोग किया जाता है। बंदी को एक विशेष प्रकार की बनाई गई कुर्सी से बांध दिया जाता है, उसके सिर और शरीर से बालों को हटा दिया जाता है जिससे कि इलेक्ट्रोड का भली प्रकार से संपर्क हो सके। 2000 वाट का उच्च बोल्ट का करेंट लगाया जाता है बंदी प्राय: बंधनों से मुक्ति के लिए आगे की ओर तब लटकता है जब स्विच को ऑन कर दिया जाता है। शरीर रंग बदलता है और सूज जाता है। बंदी प्राय: मल मूत्र कर देता है, खून की उल्टी करता है। बिजली की कुर्सी का सबसे पहली बार प्रयोग करके न्यूयार्क में किया गया था क्योंकि फांसी को अमानवीय व असामयिक समझा गया था।

शूट करने वाले दस्ते द्वारा शूट करना :

सिद्धदोष को एक लकड़ी के तख्ते से या कुर्सी से हाथों और पैरों पर बांध दिया जाता है और उसके हृदय पर कपड़े का टुकड़ा रख दिया जाता है तथा प्राय: उसकी आखों पर कपड़ा बांध दिया जाता है। तब पांच व्यक्ति उसे शूट करते हैं। मृत्यु तुरंत हो जाती है किन्तु शरीर की कुछ दुर्दशा होती है।

भारत के सेना, नौ सेना और वायु सेना अधिनियमों में अधिकरणों को यह विवेकाधिकार है कि सिद्धदोष को फांसी देकर या शूट करके मृत्युदण्ड निष्पादित किया जाए।

यह पद्धति यूरोपीय देशों के अतिरिक्त रूस में भी प्रयोग में लाई जाती है।

न्यूरमवर्ग मुकदमों में जर्मन हाई कमाण्ड के सदस्यों ने, जिन्हें फांसी लगाकर मृत्यु का दण्डादेश दिया गया था, मांग की थी कि उन्हें शूट करके मृत्यु प्रदान की जाए क्योंकि वे फांसी देकर अपमानजनक मृत्यु की अपेक्षा सैनिक मृत्यु चाहते थे।

गैस चेम्बर :

नेकर को छोड़कर सिद्धदोष के सभी कपड़े उतार दिए जाते हैं और उसे एक वायु शून्य गैस चैम्बर में कुर्सी पर बांध दिया जाता है। उसके सीने के साथ स्टेथेस्कोप लगा दिया जाता है तथा गैस चेम्बर से संलग्न ट्यूबे लगा दी जाती है जिससे कि यह अवधारित हो जाए कि सिद्धदोष की मृत्यु हो गई है। एक वाल्व से एक पान (Pan) में हाइड्रोक्लोरिक एसिड और उसके बाद पोटाशियम साइनाइड, अथवा सोडियम साइनाइड छोड़ा जाता है जो पान में यंत्रवत पहुंचकर प्राणघातक गैस उत्पन्न करता है। छ: से आठ मिनट के भीतर मृत्यु हो जाती है और शरीर की दुर्दशा नहीं होती है किन्तु भयंकर उल्टियां होती हैं। तत्पश्चात् चेम्बर को रसायनों द्वारा दोष मुक्त कर दिया जाता है। यह पद्धति खर्चीली और उलझनपूर्ण है। नेवाडा वह प्रथम राज्य था जहां 1924 में गैस चेम्बर का प्रयोग किया गया था। यू. एस. ए. में पांच राज्यों में इस पद्धति को प्रयोग में लाया जाता है।

नसों में प्राणांतक इन्जेक्शन लगाना :

सोडियम थीयोपेन्टल का इन्जेक्शन दिया जाता है जिससे सिद्धदोष गहरी नींद में डूब जाता है और उसके पश्चात् पेनक्यूरानियम ब्रोमाइड का इन्जेक्शन श्वास को रोकने के लिए दिया जाता है और सबसे अंत में पोटाशियम क्लोराइड का इन्जेक्शन हृदय गति बंद करने के लिए दिया जाता है। यह समस्त प्रकिया 9 से 14 मिनट में पूरी हो जाती है और सिद्धदोष की मृत्यु हो जाती है और शरीर विकृत नहीं होता है। यू. एस. ए. में 37 राज्यों में इसके अतिरिक्त ग्वेटमाल में भी इस पद्धति का प्रयोग किया जा रहा है। चीन में भी इस पद्धति के प्रयोग किए जा रहे हैं। यू. एस. ए. के कुछ राज्यों में सिद्धदोष को यह चुनने का अवसर दिया जाता है कि वह प्राणघातक इन्जेक्शन द्वारा या शूट करके मृत्यु चाहता है।

टिप्पण : किसी व्यक्ति को मारने के दोष के दु:ख से बचने के लिए दो व्यक्ति नसों में इन्जेक्शन देने या बिजली का बटन दबाने का कार्य करते हैं जिनमें से एक डमी होता है और वह गुप्त रहता है। इसी प्रकार से, यू. एस. ए. में, शूट करने वाले दस्ते में पांच व्यक्ति होते हैं और उनमें से केवल तीन के पास सच्ची गोलियां होती है और दो के पास नकली गोलियां होती है जिससे कि उनमें से कोई नहीं जान पाता है कि मृत्यु के लिए कौन उत्तरदायी है।

मनमानीपन करने से बचाव :

यूरोपीसयसंघ, यू. के. तथा अनेक अन्य देशों ने मृत्युदण्ड को समाप्त कर दिया है तथापि, वचन सिंह के मामले में (ए आई आर 1982 एस सी 1325) उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने चार एक के बहुमत से, जिससे न्यायाधिपति श्री भगवती असहमत थे, मृत्यु दण्डादेश की वैधता स्वीकार की है। तथापि, मृत्युदण्ड किसी अन्य शास्ति की अपेक्षा गुणवत्ता की दृष्टि से भिन्न है क्योंकि यदि कोई भूल हो जाती है तो उसे सुधारा नहीं जा सकता।

साथ ही यह सत्य है कि मृत्यु या आजीवन कारावास का दण्ड देने के विषय में एक प्रकार का मनमानीपन अंतरनिहित है क्योंकि वह न्यायाधीश के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है और न्यायालय को मृत्युदण्ड और आजीवन कारावास के बीच चयन करने के विषय में मार्ग निर्देश रहित विवेकाधिकार है।

इस मनमानीपन को कम करने के लिए न्यायाधिपति श्री भगवती ने अपने असहमति के निर्णय में यह सुझाव दिया है कि "मृत्यु के दण्डादेश का उच्चतम न्यायालय द्वारा, जिसमें सभी न्यायाधीश हों, स्वत: पुनरीक्षण होना चाहिए या मृत्यु दण्डादेश की पुष्टि या अधिरोपण तब तक नहीं होना चाहिए जब तक कि समस्त न्यायालय एक मत से उसका अनुमोदन न कर दें"।

सेना, नौसेना और वायु सेना अधिनियमों के अंतर्गत महासेना न्यायालय, जिसमें पांच अधिकारी होते हैं, मृत्युदण्ड तब तक नहीं दे सकता है जब तक उसके दो तिहाई सदस्य सहमत न हों तथा संक्षिप्त महासेना न्यायालय द्वारा जिसमें तीन अधिकारी होते हैं, मृत्यु दण्डादेश केवल तब दिया जा सकता है जब तीनों अधिकारी सहमत हों। सेना न्यायालय में साधारण बहुमत का नियम लागू नहीं होता है जैसा कि उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय की दशा में होता है।

अपील का अधिकार :

निर्वाचन मामलों में उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध भारत की विधिज्ञ परिषद् के आदेशों के विरुद्ध और एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम के अंतर्गत आयोग के आदेशों के विरुद्ध अपील करने का कानूनी अधिकार दिया गया है।

दाण्डिक मामलों में उन स्थितियों में अपील का अधिकार दिया गया है जब उच्च न्यायालय विचारण न्यायालय के निर्णय को उल्ट देता है और 10 वर्ष या उससे अधिक की सजा अथवा मृत्यु का दण्डादेश देता है अथवा जहां उच्च न्यायालय मामले को परीक्षण न्यायालय से अपने पास लेकर मृत्यु का दण्डादेश देता है। किन्तु ऐसे मामले में जहां उच्च न्यायालय परीक्षण न्यायालय द्वारा दिए गए मृत्युदण्ड की पुष्टि करता है अपील को कोई अधिकार नहीं है।

परामर्श पत्र में ऐसे कतिपय विवादास्पद प्रश्न उठाए गए हैं जिन पर विधि आयोग सार्वजनिक प्रत्युत्तर प्राप्त करना चाहता था और इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित प्रश्नावली दी जा रही है :—

प्रश्नावली

1. द.प्र.सं., 1973 की धारा 354(5) में निम्नलिखित उपबंध किया गया है :—

"जब किसी व्यक्ति को मृत्यु दण्डादेश दिया जाता है तो वह दण्डादेश यह निर्देश देगा कि उसे गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाया जाए जब तक उसकी मृत्यु न हो जाए"

(क) क्या इस धारा में संशोधन करने की आवश्यकता है हां ( )

नहीं ( )

(ख) और यदि आवश्यकता है तो दण्ड निष्पादन की किन अन्य पद्धतियों को आप सुझाव देते हैं। (विचार विमर्श पत्र का अध्याय 4 और अध्याय 5 का संदर्भ ग्रहण करें)।

प्राणघातक ( ) शूट करना ( )

बिजली करेंट ( ) कुर्सी ( )

इन्जेक्शन ( )

2. यू. एस. ए. के कुछ राज्यों में सिद्धदोष को यह चुनने की छूट है कि वह प्रणांतक इन्जेक्शन द्वारा मृत्यु चाहता है या शूट करके मृत्यु चाहता है। भारत सेना अधिनियम 1950, वायु सेना अधिनियम 1950 और नौसेना अधिनियम, 1957 के अंतर्गत सेना अधिकरण को यह विवेकाधिकार है कि मृत्युदण्ड फांसी लगाकर मृत्यु द्वारा या शूट करके मृत्यु द्वारा निष्पादित किया जाए।

क्या यह विवेकाधिकार न्यायाधीशों को दिया जाना चाहिए? हां ( )/नहीं ( )

अथवा

क्या विवेकाधिकार सिद्धदोष को दिया जाना चाहिए हां ( )/नहीं ( )

3. निर्वाचन मामलों में उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध, भारत के विधिज्ञ परिषद के आदेशों के विरुद्ध, एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम, 1969 के अंतर्गत आयोगों के आदेशों के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने का कानूनी अधिकार है। दाण्डिक मामलों में, उच्चतम न्यायालय (अधिकारिता विस्तारण) अधिनियम, 1970 के अंतर्गत अपील का अधिकार वहां दिया गया है जहां उच्च न्यायालय विचारण न्यायालय के निर्णय को पलट कर किसी व्यक्ति को 10 वर्ष या उससे अधिक की कारावास की अथवा मृत्यु दण्ड की सजा देता है या जहां उच्च न्यायालय मामले को अपने हाथ में लेकर मृत्यु दण्ड देता है।

किन्तु उस मामले में अपील का कोई अधिकार नहीं है जहां उच्च न्यायालय विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए दण्ड की पुष्टि करता है।

क्या मृत्युदण्ड के सिद्धदोष व्यक्ति को उच्चतम नयायालय में अपील करने का अधिकार दिया जाना चाहिए जिससे कि उसे यह संतोष हो जाए कि देश के सर्वोच्च न्यायालय ने उसके मामले की पूरी तरह सुनवाई की है, और विशेष रूप से तब जब कही कोई भूल है और उसका सुधार नहीं किया जा सकता है तथा मृत्यु दण्ड गुणवत्ता की दृष्टि से किसी अन्य दण्ड से भिन्न है?

हां ( ) नहीं ( )

4. सेना न्यायालय अधिकरण द्वारा सेना अधिनियम, 1950, वायु सेना अधिनियम, 1950, नौसेना अधिनियम, 1957 के अंतर्गत विचारण में जब महा सेना न्यायालय द्वारा, जिसमें पांच अधिकारी होते हैं, मृत्यु दण्ड दिया जाता है, मृत्यु दण्ड केवल तब क्रियान्वित किया जाता है जब मृत्यु दण्ड दो तिहाई सदस्यों द्वारा दिया गया हो तथा संक्षिप्त महा सेना न्यायालय की दशा में जिसमें तीन अधिकारी होते हैं, मृत्यु दण्ड तब क्रियान्वित किया जाता है जब तीनों अधिकारी सहमत हों।

(क) क्या मामले का विनिश्चय उच्चतम न्यायालय में पांच न्यायाधीशों से अनधिक न्यायाधीशों की पीठ द्वारा किया जाना चाहिए।

हां ( ) नहीं ( )

यदि उत्तर 'हां' है तो

(ख) क्या बहुमत का नियम अथवा सर्वसम्मति का नियम अथवा दो तिहाई बहुमत का नियम लागू होना चाहिए?

बहुमत का नियम ( ) सर्वसम्मति का नियम ( )

दो तिहाई बहुमत का नियम ( )

(ग) दो तिहाई बहुमत की दशा में, क्या उस स्थिति में मृत्यु दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए जब दो न्यायाधीश उस मामले में मृत्यु दण्ड को ठीक नहीं मानते हैं?

हां ( ) नहीं ( )

5. मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन या क्रियान्वयन के ढंग के बारे में क्या आपका कोई अन्य सुझाव है?

(कृपया सौ शब्दों से अधिक न लिखें)

टिप्पण : यह परामर्श पत्र तथा उपरोक्त प्रश्नावली विधि आयोग की वेब साइट "www.lawcommissionofindia@nic.in" पर उपलब्ध है। प्रत्युत्तर ई मेल से "ghatate@nic.in" अथवा सदस्य सचिव भारत सरकार का विधि आयोग, सातवां तल, शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110 001 के नाम से डाक से भेजे जा सकते हैं।

MGIPRRND—17LJCA/05—75

© Government of India
Controller of Publications

PLD.92.CLXXXVII (H)
75—2005 (DSK–IV)

Price : Inland : Rs. 1985
Foreign : $ 42.14
£ 24.03

PRINTED BY THE MANAGER, GOVT. OF INDIA PRESS, RING ROAD, MAYAPURI, NEW DELHI-110064
AND PUBLISHED BY THE CONTROLLER OF PUBLICATIONS, DELHI-110054, 2006